Chap-3

तृतीय अध्याय

महानगरीय परिवेश : दाम्पत्य-जीवन की समस्याएँ

:: तृतीय अध्याय ::

:: महानगरीय परिवेश : दाम्पत्य-जीवन की समस्याएं ::

प्रास्ताविक :

प्रस्तुत प्रबंध का विषय स्वातंत्र्योत्तर महानगरीय उपन्यासों से सम्बद्ध है । मुंबई , दिल्ली , कलकत्ता , मद्रास , बैंगलोर , हैदराबाद , पटना आदि नगरों की गणना अब महानगरों के अन्तर्गत हो सकती है । नगरीकरण की प्रक्रिया में ग्राम कस्बे , कस्बे नगर और नगर महानगर में परिवर्तित हो रहे हैं । सभी लोग नगरों की ओर भाग रहे हैं । मुंबई में प्रतिवर्ष हजारों लोग आ जाते हैं । इसी प्रकार प्रायः सभी नगरों में हो रहा है । स्वतंत्रता के बाद यदि ग्राम-निर्माण की योजनाएं कार्यान्वित होतीं , तो कदाचित् ऐसा नहीं होता । परन्तु

ऐसा नहीं हुआ । गांव टूटते गये । रोजी-रोटी की संभावनाएं मिटती गयीं । परिवार की जन-संख्या बढ़ती गयी । दूसरी तरफ जमीन तो घटी थी । अतः परिवार के अन्य लोग रोजी-रोटी की तलाश में नगरों की ओर भागने लगे । बहुत-से लोग अपनी किस्मत आजमाने के लिए नगरों में प्रयाण करने लगे । हिन्दी-भाषी क्षेत्र की पूर्व-पट्टी के लोग प्रायः कलकत्ता जाते हैं तो दूसरे बम्बई-दिल्ली की ओर निकल पड़ते हैं । इस प्रकार ग्रामीण-क्षेत्र के लोग अब कृषितर व्यवसायों में आने लगे हैं । पढ़े-लिखे लोग कुछ अच्छी नौकरियां पा जाते हैं, तो अनपढ़ अशिक्षित प्रकार के लोग ड्राइवर, फिटर, मिकेनिक, मजदूर, रिक्शा-चालक आदि बन जाते हैं ।

कई बार ऐसा भी होता है कि परिवार का कोई एक व्यक्ति, या गांव का कोई एक व्यक्ति महानगर पहुंच जाता है तो वह अपने परिवार या गांव के कई लोगों को वहां बुला लेता है । इस प्रकार महानगर की जन-संख्या में निरंतर वृद्धि होती रहती है । उच्च-वर्ग या मध्य-वर्ग के लोग फ्लेट्स और कोलोनियों में रहने लगते हैं, किन्तु निम्न वर्ग के लोग झोंपड़पट्टियों में अपना डेरा डालते हैं । इस तरह महानगरों की झोंपड़पट्टियां निरंतर बढ़ती रहती हैं । "गुदड़ीघर", "अंगारे", "बसंती" आदि उपन्यासों में जिन बस्तियों का यथार्थ चित्रण हुआ है, उनका निर्माण इसी प्रक्रिया के तहत हुआ है ।

स्वतंत्रता के पश्चात् गांवों के टूटने की प्रक्रिया अधिक क्षिप्रगामी हुई है । गांवों के लोग नगरों और महानगरों में जा रहे हैं । नगरों और महानगरों के उच्च और अभिजात वर्ग के लोग योरोप-अमेरिका जा रहे हैं । अमरिका का ग्रीन-कार्ड अब "स्टेटस-सिम्बोल" होता जा रहा है । कोई गांवों में नहीं रहना चाहता । जो रह रहे हैं, वह उनकी मजबूरी है । उसी प्रकार कोई भारत में भी नहीं रहना चाहता । जो रह रहे हैं, वह उनकी मजबूरी है । विदेश से आनेवाले लोगों को

दूसरे लोग अहोभाव से देखते हैं, फिर चाहे विदेश में वे कुछ भी करते हों। ठीक उसी प्रकार गांव के लोग महानगरों के लोगों को देखते हैं। उन्हें अधिक मान-सम्मान देते हैं। हालांकि इस संदर्भ में मोहभंग की स्थिति को भी कहीं-कहीं रेखांकित किया जा सकता है। श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास "राग दरबारी" में शहर के आदमी को "सूअर का हिंड" कहा गया है जो किसी काम का नहीं होता।[1]

गांव से शहरों की ओर यह जो निर्यात हो रहा है, उसके संदर्भ में, डा० शिवप्रसाद सिंह के उपन्यास "अलग अलग वैतरणी" में दर्द के साथ एक पात्र के द्वारा कहलवाया गया है -- " आप जा रहे हैं विपिन बाबू, जाइये। कोई इसके लिए आपको दोष नहीं देगा। सभी जाते हैं। हमारे गांवों से आजकल इकतरफा रास्ता खुला है। निर्यात। सिर्फ निर्यात। जो भी अच्छा है, काम का है, वह यहां से चला जाता है। अच्छा अनाज, दूध, घी, सब्जी जाती हैं। अच्छे मोटे-ताजे जानवर, गाय-बैल, भेड़-बकरे जाते हैं। हट्टे-कट्टे मजबूत आदमी जिनके बदन में ताकत है, देह में बल है, खींच लिये जाते हैं, पल्टन में, पुलिस में, मोटरी में, मिल में। फिर ऐसे लोग जिनके पास अक्ल है, पढ़े-लिखे हैं, यहां कैसे रह जायेंगे? वे जायेंगे ही। जाना ही होगा।"[2]

प्रस्तुत अध्याय में महानगरीय परिवेश में दाम्पत्य-जीवन की जो स्थिति है, उसकी जो समस्याएं हैं, उसके जो कारक हैं, उन्हें विशेषित करने का यत्न किया जा रहा है। यह विविध स्तरीय है। निम्न-वर्ग, मध्यवर्ग और उच्च-वर्ग की दाम्पत्य-जीवन की समस्याएं अलग-अलग तरह की हैं। परिवेशगत विभिन्नता के कारण, उसके कारण भी अलग-अलग होते हैं। खाते-पीते संपन्न व्यक्तियों के दाम्पत्य की समस्याएं अन्य वर्गों से भिन्न प्रकार की हैं।

परिवार विषयक विभावना का संकुचित होना :

नगरों और महानगरों में परिवार विषयक विभावना अब संकुचित हो रही है । पहले परिवार में माता-पिता , दादा-दादी, चाचा-ताऊ , भतीजे-भतीजियाँ इन सबका समावेश होता था । परंतु महानगरीय वातावरण में अब परिवार निरंतर सिमट रहा है । सबसे पहले दादा-दादी , चाचा-ताऊ , भतीजे-भतीजियाँ का संसार कटा । उसके बाद माता-पिता और बहन-भाई आदि भी कटे । भाई-बहन जब तक छोटे होते हैं , तब तक परिवार का अंग होते हैं । बड़े होते ही उनके अपने-अपने संसार हो जाते हैं । उसके बाद परिवार में पति-पत्नी और बच्चे रह गये । उसके बाद युग्मक परिवार --- केवल पति-पत्नी । इस विघटन की अंतिम परिणती है --- एकक परिवार की , जिसे हम निर्मल वर्मा के उपन्यास " वे दिन " में देख सकते हैं ।

" वे दिन " में जाक और मारिया पति-पत्नी थे , पर दोनों एक-दूसरे को छोड़ चुके हैं । दोनों अलग-अलग रहते हैं । नौकरी करते है और कमाते-खाते हैं । उनका एक बच्ची है - मीता । पर उसे होस्टेल में रख छोड़ा है । छुट्टियों में मीता जब आती है , तो ये लोग उसे बारी-बारी से अपने पास रखते हैं । इस प्रकार बच्चा आबंटित हो जाता है । यह आबंटन किसी प्रेम , भावना या स्नेह के कारण नहीं ; उत्तरदायित्व के अहसास के कारण है ।

" वे दिन" उपन्यास में प्राग महानगर के परिवेश को चित्रित किया गया है । महायुद्धोत्तर पश्चिम की दिशाहारा पीढ़ी की यंत्रणा को उसमें रूपायित किया गया है । महायुद्धों की विभीषिका ने मानवीय भावों का छेद उड़ा दिया है । पश्चिम में तो काम-भावना या यौनेच्छा को ही अब "लव" कहा जाता है । "एन ए.बी.हेड. आफ लव" नामक पुस्तक में यौन-भावना को ही "लव" कहा गया है ।[3]

इस "क्लब" के लिए ही वहाँ लड़के-लड़की या स्त्री-पुरुष मिलते हैं। रायना भी अपनी शारीरिक-क्षुधा की तृप्ति के लिए कुछ-कुछ दिनों के अन्तराल में कोई मन-पसंद साथी चुन लेती है। जब वह वियेना से प्राग छुट्टियाँ मनाने जाती है, तब उपन्यास के नायक के साथ वह तीन-चार दिन घूमती है और अंतिम दिन उसके साथ सहशयन करती है। वह इसे इसे अस्वाभाविक नहीं मानती। केवल इतना ध्यान रखती है कि उसके साथ जो संबंध जोड़ता है उसमें किसी तरह का अपराध-बोध विकसित न हो।

संयुक्त परिवारों का टूटना :

नगरीकरण तथा औद्योगीकरण के कारण जो महानगरीय परिवेश बनता जा रहा है, उसमें संयुक्त-परिवार के लिए कोई गुंजायश नहीं है। ग्रामीण परिवेश में लोग मुख्यतया कृषि से संलग्नित थे। कृषि अकेले व्यक्ति का काम नहीं। अतः संयुक्त-परिवार की स्थिति बनी थी, परंतु जब स्थितियों में परिवर्तन आया तो संयुक्त-परिवार का स्थान विभक्त-परिवार ने ले लिया। संयुक्त-परिवारों के टूटने से जहाँ दंपति को कुछ स्वतंत्रता मिली है, वहाँ कहीं-कहीं दाम्पत्य पर भी उसका असर पड़ा है। संयुक्त-परिवारों में दाम्पत्य-जीवन अधिक स्थायी था। पति-पत्नी में टोरा-टूटन की स्थिति बहुत कम आती थी। किसी कारण यदि उनमें मन-मुटाव हो जाता था तो परिवार के अन्य सदस्य उन्हें किसी तरह मना लेते थे। अनेक असंतोषों के बावजूद "मन्नो मरजानी" (कृष्णा सोबती) की मन्नो अपने परिवार से बंधी रहती है, तो उसका कारण उनका संयुक्त-परिवार ही है।

शहरी जीवन-प्रणाली मनुष्य को स्वकेन्द्रित बना देती है। वह स्वार्थी और अनुदार हो जाता है। संयुक्त-परिवार से विभक्त परिवार

की ओर संकुचित होता है । इस प्रकार अपने परिवेश और परिवार से कट जाता है । "नदी फिर बह चली" (हिमांशु श्रीवास्तव) का जगलाल पटना जाकर "ड्रैवर" (ड्राईवर) बन गया है । वह अपनी सारी कमाई शहर में ही उड़ा देता है और पत्नी के समझाने पर कहता है — " घर में आखिर मेरे हिस्से में क्या खर्च आता है, एक तुम हो और कौन ? गइया के तीन-तीन बच्चे हैं । जनाना, फिर अपने अलग । कहां वे पांच, कहां तुम अकेली । मेरे खर्च का सवाल ही नहीं उठता ।" [4]

जगलाल की पत्नी परबतिया तो गांव की और वह भी पिछड़ी जाति की है, अतः उसकी सोच ऐसी है कि वह अपने पति को घर में मदद करने के लिए कहती है । परन्तु आजकल ऐसा भी होने लगा है कि बहुत से ग्रामीण क्षेत्र के युवक पढ़-लिखकर शहरों में अच्छी नौकरियां करने लगे हैं । वे अपने ग्राम्य-स्थित परिवार को मदद करना तो दूर, उल्टे अपनी पैतृक-संपत्ति में, जमीन में, हिस्सा मांगने लगे हैं । एक बार आदमी तो फिर भी कुछ लिहाज कर जाता है, पर उनकी पत्नियां उन्हें रात-दिन उकसाती रहती हैं । उसमें भी यदि ग्रामीण युवक किसी शहरी शिक्षित अन्य जाति की युवती से विवाह कर लेता है, तब तो उनके परिवार-विघटन में कोई कोर-कसर न रह जायेगी ।

डा. रामदरश मिश्र का उपन्यास " अपने लोग " महानगरीय बोध को स्थापित करने वाला उपन्यास है । उपन्यास के नायक डा. प्रमोद शुक्ल गोरखपुर के निकट के गांव के हैं और दिल्ली के कालेज में अध्यापक हैं । बीस साल दिल्ली में रहने के बाद वे अपने वतन गोरखपुर में रीडर होकर आ जाते हैं । परन्तु समस्या की कड़वाहट तब सामने आती है जब उनके भाइयों की स्वार्थ खुदगर्जी

प्रकट होने लगती है । डा० प्रमोद के दोनों भाई उनके घर को एक प्रकार का विश्राम-केन्द्र समझ लेते हैं । एक भाई अपनी पत्नी को इलाज के लिए बच्चों सहित भेज देता है । वह अनेक महीनों तक वहाँ रहती है । दूसरा भाई भाई की प्रतिष्ठा और पैसों के बल पर मुकदमा लड़ने की ठान लेता है । एक नौकरीपेशा प्राध्यापक पर इतना बोझ आ जाता है कि उसके परिवार की आर्थिक गाड़ी चरमराने लगती है ।[5]

युग्मक-परिवार :

महानगरीय परिवेश में संयुक्त परिवार टूट-बिखरकर अब युग्मक-परिवार में बदल रहा है । "अब आपका बण्टी", "अन्धेरे बन्द कमरे", "रेखा", "बैसाखियों वाली इमारत", "छोटे छोटे पक्षी", "कड़िया", "तीसरा आदमी", "वे दिन", आदि उपन्यासों में हमें युग्मक परिवार की स्थितियाँ दृष्टिगत होती हैं ।

"आपका बण्टी" में अजय और शकुन के परिवार को हम युग्मक परिवार की कोटि में रख सकते हैं । अजय और शकुन के अतिरिक्त पात्र आया है -- बूढ़ी मौसी । पर उसका होना, न होना बराबर है, क्योंकि वह अजय और शकुन के निर्णयों को बदल नहीं सकती । वकील चाचा कभी-कभार आते रहते हैं । फलतः अजय और शकुन के दाम्पत्य-जीवन में दरार पड़ने लगती है, वहाँ उस दरार को भरनेवाला कोई भी नहीं है । अतः उनका दाम्पत्य विवाह-विच्छेद में परिणत होता है ।

"अन्धेरे बन्द कमरे" के हरबंस और नीलिमा भी एक युग्मक परिवार है । नीलिमा के दूसरे रिश्तेदार हैं । पर सब अलग-अलग रहते हैं । हरबंस के रिश्तेदार भी उसके साथ नहीं रहते ।

अतः उनका दाम्पत्य भी बिखराव के कगार पर है । अभी उनका विवाह-विच्छेद नहीं हुआ है, पर होने के लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं । दोनों में एक प्रकार का शीत-युद्ध शुरू हो गया है ।

"रेखा" उपन्यास में रेखा और डा. प्रभाशंकर भी अकेले हैं । डा. प्रभाशंकर प्रौढ़ावस्था में युवती रेखा के साथ विवाह करते हैं । रेखा भावातिरेक में अपने प्रोफेसर को समर्पित हो जाती है और उनसे विवाह करने का निर्णय कर लेती है । रेखा को कोई रोकने-टोकने और समझाने वाला नहीं था । डा. प्रभाशंकर भी रेखा के सौन्दर्यपाश में अंध हो जाते हैं । प्रारंभ में तो रेखा प्रोफेसर के प्रति निष्ठावान रहती है, परंतु शनैः शनैः वह अनुभव करती है कि उसके यौवन के ताप को थामने का सामर्थ्य उसके पति में नहीं है । यहाँ से यौन-संतुष्टि का एक भटकाव शुरू होता है जो उभय के जीवन को तहस-नहस कर डालता है ।

"बैसाखियोंवाली इमारतें" रमेश बक्षी का एक महानगरीय परिवेश-संपन्न उपन्यास है । उनके उपन्यासों में भी प्रायः युग्मक परिवार की स्थिति मिलती है । फलतः यहाँ भी स्त्री-पुरुष, पति-पत्नी और प्रेमी-प्रेमिका के मिथुन-संबंधों पर एक खुली आँख का दृष्टिपात मिलता है ।[6] उसके नायक का व्यक्तित्व "एण्टीलव" से निर्मित हुआ है । उसकी ऐसी सोच के कारण न उसकी अपनी पत्नी से पटती है, न प्रेमिका से । उसके अनुसार प्रेम महज बकवास है । प्रेम को वह "जीभ पर उगा कैंसर "[7] तथा " बेहद गरम देश में जमाई गई आइसक्रीम "[8] कहता है । अतः नायक-नायिका में, पति-पत्नी में अलग होने की नौबत आ जाती है । उसकी पत्नी उसे छोड़ जाने का निर्णय करती है । तब उसके भीतर का पशु प्रबल

हो उठता है और ~~जाने~~ पत्नी के जाने से पूर्व उसे एक बार भोग लेने की इच्छा उसके मन में जाग्रत होती है । परन्तु उसकी पत्नी प्यार, दुलार और सुखदुखा यादों को लेकर वहां से नहीं जाना चाहती थी । वह कहती है — " मैं जाते-जाते एक असंतुष्ट और जलती हुई रात को इस घर में ~~इस~~ छोड़ ही जाऊंगी और वैसी ही याद साथ में भी ले जाऊंगी ।" [9] इससे नायक का पुंसत्व आहत होता है और बलात्कार करने का यत्न करता है, परन्तु उसकी पत्नी अपने नाखून और दांतों के हथियार से उसे परास्त कर देती है ।

शैलेश मटियानी कृत "छोटे छोटे पक्षी" दिल्ली महानगर के परिवेश को रूपायित करता है । इसके नायक-नायिका इलाहाबाद से भागकर दिल्ली आते हैं और यहां कुछ मित्रों की सहायता से प्रेम-विवाह कर लेते हैं । अतः यहां भी युग्मक-परिवार की स्थितियां हैं, किन्तु यहां समस्याएं आर्थिक-पारिवारिक हैं । " वे दिन" में जाक और रायना जब तक साथ-साथ पति-पत्नी के रूप में रहते हैं, तब तक स्थिति युग्मक-परिवार की रहती है और कदाचित् इसीलिए दोनों में विच्छेद हो जाता है, क्योंकि दोनों को जोड़कर रखनेवाले तंतुओं का अभाव है ।

भीष्म साहनी कृत "कड़ियां" भी पंडित दाम्पत्य की ~~मशहूर~~ त्रासदी है । प्रमिला और महेन्द्र के परिवार में भी कोई तीसरा नहीं है । सेक्स के प्रति प्रमिला दृष्टिकोण पुराना और बुर्जुआ है । वह उसे गोपनीय और किंचित घृणास्पद भी समझती है । सुंदर वह है, पर उसका प्रदर्शन उसे कुत्सित लगता है । महेन्द्र मोडर्न और स्मार्ट पत्नी चाहता है । ऐसी स्थिति में वह अपनी आफिस की कैशियर मिस सुधमा के प्रति आकृष्ट होता है, क्योंकि वह उसकी दृष्टि में आधुनिका है । वह प्रेमपूर्ण संवाद बोल सकती है । यथा — " तुम्हारे वक्त से जो घड़ियां टूट कर मेरी गोद में

पड़ जाएं, मैं उन्हीं से संतुष्ट हूं।"[10] तिस पर महेन्द्र को मित्र मिला नाटा जैसा, जो बीस औरतों के साथ प्रेम कर चुका है और स्वयं को अतली प्रेमी और अरस्तू से कम दार्शनिक नहीं समझता है। वह उपन्यास के नायक महेन्द्र को समझाता है — " भले ही बीसियों स्त्रियों के साथ संबंध रखो, पर घरवाली से छिपाए रखो। इसीमें सच्ची नैतिकता है।"[11] परन्तु नाटा तो "सिखण्ड" है, महेन्द्र अभी कच्चा है। सुषमा को लेकर उसके मन में "गिल्ट" की भावना रहती है। अतः एक दिन भावावेश में प्रमिला को वह सबकुछ बता देता है। वह प्रमिला से क्षमा-याचना भी करता है, किन्तु यहां प्रमिला थोड़ा-सा चूक जाती है। वह अकड़ जाती है और उसकी इस अकड़ में महेन्द्र और भी बरखण्ड हो जाता है। यहां जिन स्थितियों का निर्माण होता है वे भी युग्मक-परिवार की परिणती है।

"कमलेश्वर कृत " तीसरा आदमी" में संजय का भुजंग नरेश-चित्रा के दाम्पत्य को जो डंसता है, उसके मूल में भी नरेश-चित्रा का युग्मक-परिवार ही है। नरेश जब तक इलाहाबाद में रहता है, तब तक उनका दाम्पत्य-जीवन बराबर चलता रहता है। परन्तु नरेश की तबादला दिल्ली हो जाता है। यहां उसे अपने एक दूर के रिश्ते के भाई के साथ रहना पड़ता है। चाहकर भी वह दिल्ली जैसे महानगर में अकेले नहीं रह सकता। इस संदर्भ में डा. पारूकान्त देसाई लिखते हैं — " पूर्ण स्वतंत्रता या पत्नी पर पूर्णाधिकार बिना आत्मनिर्भरता के असंभव है। आज की बदली हुई परिस्थितियों में स्त्रियां स्कूलों, कालेजों और दफ्तरों में काम करने लगी हैं और इस प्रकार उनके जीवन में पति के अतिरिक्त एक तीसरे पुरुष का प्रवेश जाने-अनजाने न्यूनाधिक मात्रा में होने लगता है। यह एक अवश्यंभावी परिणाम है। जहां महानगर का

व्यक्ति इसके साथ समझदारी पूर्वक का या पुरानी विचारधारा के अनुसार कायरतापूर्ण समझौता कर लेता है ; वहां कस्बाई मनोवृत्ति का मध्यवर्गीय पुरुष कुछ हिचक का अनुभव करता है और उसी में वह टूटने लगता है । प्रस्तुत उपन्यास में नरेश का टूटना इसी प्रकार का है ।" [12] नरेश को लगता है कि अपने भाई सुमंत के साथ वह न केवल कमरा "शेयर" कर रहा है, पर पत्नी को भी "शेयर" कर रहा है । यथा-" रात में ... जब मैं चित्रा को अपनी बाहों में लेता तो अजनबी गंध फूटती थी । वह छाया (सुमंत की छाया) मंडराती हुई कहीं से आती थी और मुझसे पहले उसकी बांहों को जकड़ लेती थी ... जब मैं उसकी बांहों पर हाथ रखता तो वहां दो हाथ पहले से मौजूद होते थे । वह छाया मुझे चित्रा के पास पहुंचने से रोकती थी... चित्रा की आंखों में जब मैं झांकता था तो वहां चार आंखें झांकती होती थीं ... चार बाहें उसे कस रही होती थीं, चार होंठ उसे प्यार कर रहे होते थे ..." [13] यहां युग्मक-परिवार वाली स्थिति यदि न होती तो यह सब न होता ।

एकक परिवार :

बृहद संयुक्त परिवार यदि पारिवारिक-जीवन का एक छोर है , तो एकक परिवार उसका दूसरा अंतिम छोर । जहां स्त्री या पुरुष अकेले रहते हैं , अविवाहित रहते हैं और उनके साथ परिवार का अन्य कोई भी सदस्य नहीं रहता है , वहां एकक-परिवार की स्थिति बनती है । कई बार ऐसा भी होता है कि व्यक्ति का घर-परिवार तो गांव , कस्बे या किसी छोटे नगर में होता है , परन्तु वह खुद नौकरी या व्यवसाय हेतु किसी महानगर में रहता है , तो उसकी स्थिति भी एक प्रकार से एकक परिवार-सी ही रहती है । "पचपनखंभे लाल दीवारें " (उषा प्रियंवदा)

की सुषमा तथा "टेराकोटा" (लक्ष्मीकान्त वर्मा) मिति इसके उदाहरण हैं ।

पिछले कुछ वर्षों में महानगरीय जीवन में जो बदलाव आये हैं, उनके कारण एकल-परिवार की संभावनाएं क्रमशः बढ़ रही हैं । यहां किसी के मन में प्रश्न उठ सकता है कि यह एकल-परिवार का दाम्पत्य-जीवन से क्या संबंध ? एकल-परिवार वालों का तो दाम्पत्य होगा ही नहीं । इसका उत्तर यह है कि दाम्पत्य को खंडित करने में इसकी भूमिका को नकारा नहीं जा सकता । दूसरे जहां दाम्पत्य खंडित होता है, वहां पुनः एकल-परिवार की संभावना बढ़ जाती है । "दो दिन" के जाक और रायना पहले पति-पत्नी थे, पर जाक रायना को छोड़ देता है, तब वे एकल-परिवार की स्थिति में आ जाते हैं । रायना को छोड़ने के बाद जाक ने दूसरा विवाह नहीं किया है, रायना ने भी दूसरा विवाह नहीं किया है । दोनों अलग-अलग काम करते हैं और रहते हैं । अपनी यौन-संतुष्टि के लिए वे जब-तब किसी साथी को तलाश लेते हैं । यहां तक कि अलग हुए बाद भी उनमें दोस्ताना संबंध हैं और यौन-तुष्टि के लिए वे कभी-कभार मिल भी लेते हैं । ऐसा महानगरीय परिवेश में ही संभव हो सकता है । गांव, कस्बे या छोटे नगर में लोग एक-दूसरे को जानते हैं, एक-दूसरे के जीवन में दिलचस्पी लेते हैं, या कहें दूसरे के फटे में टांग अड़ाते हैं, परन्तु महानगरों में कई बार लोग अपने पड़ोसी तक को नहीं पहचानते । यह पारस्परिक अपरिचय दाम्पत्य-उच्छृंखलता को जन्म देता है । कोई कुछ भी करे, यहां किसीको किसीसे कोई मतलब नहीं होता, जब तक उनका वह व्यवहार उन्हें किसी तरह परेशान न करे । तब अपने मतलब से मतलब रखते हैं । वैयक्तिक-स्वतंत्रता

के लिए जहाँ यह अच्छी बात है, वहाँ दाम्पत्य-जीवन के लिए यह एक खतरा भी है।

महानगरीय जीवन में मूल्य बदल रहे हैं, या यों भी कहा जा सकता है कि मूल्यहीनता बढ़ रही है। पहले कोई लड़की कुछ समय के लिए अकेले रह लेती थी, परंतु अब विवाह उसके लिए कोई अनिवार्य आवश्यकता नहीं है। बहुत-सी लड़कियाँ अब नौकरी करते हुए आजीवन अविवाहित रहती हैं और यह भी नहीं है कि उनका कौमार्य अखंडित रहता है। "टेराकोटा" की मिति अपने प्रेमी रोहित से यही तो अपेक्षा रखती थी। मिति अपनी पारिवारिक स्थितियों के रहते विवाह नहीं कर सकती थी, पर वह कोई सती-साध्वी भी नहीं है। वह रोहित से बाकायदा संबंध रखती है। वह तो चाहती थी कि रोहित भी उसकी तरह अविवाहित रहे और दोनों के वह संबंध भी रहें। परन्तु मिति के हिसाब से रोहित थोड़ा दकियानुस निकल जाता है। पहले अविवाहित यौन-संबंध अनुरक्षित थे। स्त्रियों के लिए गर्भधारण का खतरा रहता था, किन्तु आधुनिक विज्ञान ने अब उस खतरे को दूर कर दिया है। दूसरे अविवाहित माँ को अब विधिवत् स्वीकृति मिल गई है। पहले शिशु को बाप का नाम देने की अनिवार्यता थी। शशिप्रभा शास्त्री कृत उपन्यास ~~की×नायिका×मालती×को×अपने×बॉस×~~ "नावें" की नायिका मालती को अपने बॉस सोमजी से गर्भ रहता है। सोमजी शादीशुदा हैं। मालती को गर्भ गिरा देने की सलाह देते हैं। पर मालती ऐसा नहीं करती। वह बदायूँ चली जाती है और रेवा निगम नामक एक प्रगतिशील महिला की सहायता से उसे नौकरी भी मिल जाती है। अपनी पुत्री नीलिमा को वह जन्म देती है। परन्तु नीलिमा के स्कूल-प्रवेश के समय समस्या खड़ी होती है। तब नीलिमा को पिता का नाम देने के लिए वह विजयेश

से विवाह कर लेती है ।[14] परन्तु अब तो शिशु के नाम के पीछे माँ का नाम भी लग सकता है और इसको कानूनी मान्यता भी प्राप्त हो गई है । महानगरों में अब अविवाहित माँओं की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है । फिल्म अभिनेत्री नीना गुप्ता इसका ज्वलंत उदाहरण है । सुरेन्द्र वर्मा कृत उपन्यास " मुझे चाँद चाहिए " की नायिका वर्षा वसिष्ठ भी अविवाहित माँ बनती है । [15]

पहले ग्रामीण क्षेत्र में ऐसे पुरुष अविवाहित रह जाते थे जिनको कोई कन्या नहीं देता था , परन्तु अब नगरीय एवं महानगरीय परिवेश में कई ऐसे पुरुष मिलते हैं जो स्वेच्छा से अविवाहित रहना पसंद करते हैं । हमारे प्रधानमंत्री और भूतपूर्व राष्ट्रपति दोनों अविवाहित हैं । ऐसे अविवाहित पुरुष एकल-परिवार का निर्माण करते हैं । भगवतीचरण वर्मा कृत "रेखा" उपन्यास के प्रोफेसर प्रभाकर अपने वन-प्रवेश (ब्रह्मचर्य के बाद की उम्र) तक अविवाहित ही थे । ऐसे प्रभावशाली धनसंपन्न-सत्तासंपन्न अविवाहित पुरुष अन्य लोगों के साम्यस्थ-जीवन में समस्याएं पैदा कर सकते हैं । उपन्यास की एक पात्र देवकी जो प्रोफेसर की प्रेमिका रह चुकी है , उनके संदर्भ में कहती है —" शिकार का तो शौक उन्हें है , लेकिन शेर-चीते आदि जंगली जानवरों के शिकार का शौक नहीं है । वह शहर के आकाश उड़ने वाली चिड़ियों का ही शिकार करते हैं , और इसमें इनका निशाना अचूक होता है ।" [16]

कमलेश्वर कृत "डाकबंगला" उपन्यास में मि. बतरा भी इसी प्रकार का एक पात्र है । इस बतरा के संदर्भ में डा. पारुकान्त देसाई लिखते हैं —" वह एक धनता-पुजा , हरफन-मौला टाईप का आदमी है । आधुनिक भ्रष्ट एवं उच्च समाज की सामाजिक , नैतिक एवं राजनीतिक भ्रष्टता के कारण ही उसका व्यवसाय चलता

है । किसीको परमिट , किसीको कोटा , किसीको लाइसेन्स , दिलाना ही उसका व्यवसाय है और उसके गुरों में वह भलीभांति माहिर है , क्योंकि सरकार के उच्च अफसरों की नब्ज़ को वह बराबर पहचानता है ।" 17 इसके लिए बाकायदा उसने एक दफ्तर खोल रखा है । उसमें वह स्टेनो , टाईपिस्ट या सेक्रेटरी के रूप में सुंदर अविवाहित लड़कियों को रखता है और अपने वाक्चातुर्य तथा वैभव से उन्हें फांसता है । उपन्यास की नायिका इरा भी उसका एक शिकार है ।

राजकमल चौधरी कृत "मछली मरी हुई " का नायक निर्मल पद्मावत भी अविवाहित है । उपन्यास के अन्त में शिरीं मेहता के साथ उसके विवाह के कुछ संकेत मिलते हैं , परन्तु ज़िन्दगी के अनेक वर्षों तक , युवावस्था में , वह अविवाहित था । यद्यपि उसके अविवाहित रहने के कारण कुछ अलग हैं । बचपन में उसकी मां पर-यायदाह देखकर एक ड्रायवर के साथ भाग गई थी , अतः स्त्री-जाति के प्रति उसे नफ़रत हो गई थी । बाद में विदेश में कल्याणी द्वारा तिरस्कृत होने के कारण वह मानसिक कुण्ठा नपुंसक हो जाता है ।

महानगरीय परिवेश और स्थितियों के कारण अब स्त्रियों के एकल परिवार भी मिलते हैं । भीष्म साहनी कृत "कड़ियां" उपन्यास की सुषमा भी एकल-परिवार की सदस्या है । और कोई नहीं होने के कारण ही वह महेन्द्र के साथ यौन-संबंधों को जोड़ पाती है , परन्तु इसी सबब प्रमिला का हंसता-खेलता परिवार बिखर जाता है । मां-बाप होते हुए भी बालक पप्पू को अनाथों-सी ज़िन्दगी जीनी पड़ती है । उषा प्रियंवदा कृत " पचपन खंभे लाल दीवारें " की सुषमा भी एकाकी जीवन जीने के लिए अभिशप्त है । भरा-पूरा परिवार

होते हुए भी सुषमा दिल्ली में अकेली रहती है । अपने इस अकेलेपन का अहसास उसे है । वह भी और लड़कियों की भांति विवाह करना चाहती है । अपना घर बसाना चाहती है । परंतु अपनी पारिवारिक स्थितियों के कारण वह मजबूर है । एक स्थान पर अपनी सहेली मीनाक्षी से वह कहती है --" पैंतालीस साल की आयु में मैं भी एक कुत्ता या बिल्ली पाल लूंगी ... उसे सीने से लगा ~~रखूंगी~~ रखूंगी ... आज से सोलह साल बाद शायद तुम अपनी ~~बेटी~~ बेटी को लेकर इसी कालेज में आओ , तब भी तुम मुझे यहीं पाओगी । कालेज के इन पचपन खंभों की तरह स्थिर , अचल । " 18

इसी उपन्यास में संस्कृत की प्राध्यापिका मिस शास्त्री का भी वर्णन मिलता है । ऊपर सुषमा के कथन में "पैंतालीस" का जो उल्लेख है , वह उसी संदर्भ में है । अविवाहित रह जाने के कारण मिस शास्त्री मानसिक विकृतियों का शिकार हो जाती है । "होस्टेल की लड़कियों की चिट्ठयों को चोरी-चोरी पढ़ना दूसरी अध्यापिकाओं के खिलाफ लड़कियों को भड़काना , बेमतलब लड़कियों को डांटना , बात-बेबात पर चिढ़ना , लड़कियों तथा अध्यापिकाओं ~~की~~ के लव-अफेर्स की गोशिप में रात-दिन व्यस्त रहना आदि चीजें उनके कुण्ठित दिमाग का द्योतन करती हैं । " 19

रमेश बक्षी कृत "बैसाखियोंवाली इमारतें " की मिस जायसवाल भी इसका एक उदाहरण है । मिस जायसवाल एक कालेज में हिन्दी की प्रोफेसर हैं । बैचलरों की अपेक्षा वह विवाहित लोगों को ज्यादा पसंद करती है । एक स्थान पर उपन्यास के नायक को वह कहती है --" ये कुंवारे लोग बड़े बकवास होते हैं । "प्यार ~~का~~ इन पर अफीम की गोली का-सा असर करता है और असल में होता है वह चाकलेट । वे ज्यादा कुछ करेंगे तो नोंच-खसोट लेंगे । मेरे मन में उन सबके प्रति एक डिसलाइकिंग है ।

उनसे दोस्ती करने का मतलब है, अपना वक्त जाया करना।"[20]

वस्तुतः इसके पीछे मिस जायसवाल की सैडिस्ट मनोवृत्ति ही काम करती है। वह स्वयं अविवाहित है। विवाहित लोगों के साथ अफैर्स करने से उनके घर टूटते या खंडित होते हैं और उसीमें उसे मानसिक संतुष्टि होती है।

दाम्पत्य-सुख से वंचित नारियां :

महानगरीय परिवेश में कुछ ऐसी नारियां मिलती हैं जो विवाहित जीवन जीना चाहती हैं, दाम्पत्य-रस में भींगना चाहती हैं, पर बेचारी किन्हीं कारणों से उससे वंचित रह जाती हैं। पहले नारी-शिक्षा का प्रचार नहीं था। अतः लड़की को विवाहित कर देने के अलावा दूसरा कोई चारा नहीं था। जो मां-बाप गरीब होते थे और दहेज नहीं जुटा पाते थे, वे दुहाजू-तिहाजू या अपात्र के गले अपनी बेटियों को मढ़ देते थे। "सेवासदन" और "निर्मला" में यही तो होता है। परंतु अब नारी-शिक्षा का इतना प्रचलन हो जाने से लड़कियां पढ़ने लगी हैं और फलतः किन्हीं कारणों से जब उनका विवाह नहीं होता है तब वे नौकरी करके अपने पैरों पर खड़ी रहना चाहती हैं। "पचपन खंभे लाल दीवारें" की मिस शास्त्री तथा "छाया मत छूना मन" की सुधा इस प्रकार की नारियां हैं।

कुछ लड़कियां सुशिक्षित होती हैं और अच्छे पदों पर काम करती हैं। सुंदर, सुशिक्षित और नौकरीशुदा होने के कारण वे चाहें तो उन्हें अच्छा घर-वर मिल सकता है। इन नव-विकसित परिस्थितियों हमारे यहां कुछ जातियों में तो नौकरीशुदा लड़कियों की शादी बहुत जल्दी हो जाती है। आजकल के महंगाई के जमाने में महानगरों में जीना मुश्किल हो रहा है, अतः स्त्री-पुरुष दोनों

का नौकरी करना और कमाना आवश्यक होता जा रहा है । ऐसी स्थिति में कई पुरुष चाहते हैं कि उन्हें कमाती-धमाती लड़की मिल जाय । तब वे दहेज के लालच में भी नहीं पड़ते । अतः नौकरीशुदा लड़कियों को वर आसानी से मिल जाते हैं । परन्तु कुछ ऐसी अभागिन लड़कियां होती हैं कि उनकी परिवार-प्रतिबद्धता , परिवार-प्रतिश्रुतता , पारिवारिक आर्थिक समस्याएं उनको ऐसा करने से रोकती है । वे इतनी स्वार्थी नहीं होतीं कि अपने परिवार को भूख की आग में झोंककर खुद अमन-चमन करें । अतः अपने सारे अरमानों का गला घोंटकर वे अविवाहित रहना पसंद करती हैं ।

उषा प्रियंवदा कृत " पचपन खंभे लाल दीवारें " इसका एक ज्वलंत उदाहरण है । इस उपन्यास की नायिका सुषमा सुंदर , सुशील और सुशिक्षित है । नील नामक एक युवक उसके जीवन में आता भी है और कुछ दिन सारी स्थितियों को भुलकर वह उसके प्रेम में खो जाती है । वह एक कालेज में प्राध्यापिका और गर्ल्स हास्टेल में वार्डन है । स्थिति की भयावहता तब आती है , जब उसके सामने दो ही विकल्प रह जाते हैं — या तो नील को छोड़ दें या नौकरी छोड़ दें , क्योंकि उन दोनों को लेकर कालेज तथा हास्टेल में काफी कानाफुसियां हो रही थीं । सुषमा के पिता निवृत्त हैं , ऊपर से लकवाग्रस्त । परिवार में मां तथा छोटे भाई-बहन हैं । उन सबका उत्तरदायित्व सुषमा पर है , क्योंकि भाई-बहनों में वह सबसे बड़ी है । अतः अपने मन को मारकर वह नील को छोड़ देने का निर्णय करती है , यद्यपि उसके मन में एक कसक , एक तड़प रह जाती है । वह टूट जाती है और महसूसने लगती है —" नील के बगैर मैं कुछ भी नहीं हूं , केवल एक छाया , एक खोये हुए स्वर की प्रतिध्वनि ; और अब ऐसी ही रहूंगी , मन की वीरानियों में भटकती हुई ।" 21

लक्ष्मीकांत वर्मा कृत " टेराकोटा " की मिति की स्थितियां भी कुछ-कुछ उपमा जैसी ही हैं । वह महानगर दिल्ली में रहकर पढ़ती है, छोटी-मोटी नौकरियां कर अपने परिवार को भी पालती है और साथ-साथ आगे पढ़ती भी रहती है । इस प्रकार वह आई.ए.एस आफिसर हो जाती है, परन्तु परिवार -प्रतिबद्धता के कारण स्वयं अविवाहित रहना पसंद करती है । रोहित नामक एक युवक से उसे प्रेम भी होता है । पर रोहित उससे विवाह करना चाहता है । मिति विवाह कर नहीं सकती । फलतः रोहित अन्यत्र विवाह कर लेता है । मिति व्यस्तता के अंधेरों में खुद को गुम कर लेती है या ऐसा करने का नाटक करती है । अपनी छोटी बहन की शादी में वह छोटे-से छोटे विधि-विधानों का ध्यान रखती है, उसके पीछे भी उसकी अपनी अधूरी इच्छाएं हैं । वह अपनी बहन उमा को एक "ट्रेडिशनल " वधू के रूप में देखना चाहती है । मिति सबका उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेती है, पर भीतर से टूट-फूट जाती है । उमा की शादी के समय दौड़ा पहुंचना और विदा के समय अचानक नदारद होकर अगले स्टेशन पर वर-वधू को आशीर्वाद देना जैसी घटनाएं इस बात का प्रमाण है । [22] हिन्दी उपन्यास साहित्य के एक समर्थ आलोचक डा. विवेकीराय के शब्दों में मिति का यह संघर्ष अनेक मोर्चों पर है । यथा —

" पारिवारिक दरिद्रता, नारीत्व की मांग, स्वतंत्र अस्तित्व का आग्रह, नौकरी और रोहित को समझने में वह जूझ रही है । सारी लड़ाई परंपरित मूल्य और मुक्त वातावरण की मांग के बीच है । ... मिति के रूप में एक नये तेवर की आधुनिक नारी, सर्वथा क्रान्तिकारी मूल्यों के साथ चित्रित हुई है । उसकी दृष्टि में नैतिकता के संकोच में डूबा रोहित कायर और अनाड़ी है । मिति अपने समस्त मनोवेगों के

साथ जीने का अधिकार मांगती है । वह परंपरित वैवाहिक जीवन बिताने में असमर्थ है ।"[23]

महानगरीय जीवन में नारी का यौन-शोषण तो हो ही रहा है, एक दूसरे प्रकार का शोषण भी हो रहा है । वह है घर-परिवार वालों की तरफ से लड़की का आर्थिक और भावनात्मक शोषण । शशिप्रभा शास्त्री द्वारा प्रणीत "नावें" उपन्यास की नायिका मालती अपने घर-परिवार के लिए खटती है । मालती के पिता रिटायर्ड हो गये हैं और घर का पूरा निर्वाह मालती की कमाई पर चल रहा है । अपने शुष्क जीवन की एकरसता को तोड़ने के लिए वह सोमजी से संबंध बनाती है । वह सोमजी के साथ कई बार बाहर भी जाती है । सोमजी का शालीन और सात्विक व्यक्तित्व उसे लुभाता है । इन सबमें उसके घर-वालों का कोई विरोध नहीं है । परन्तु मालती को जब सोमजी से गर्भ रहता है तब सबकी कलई खुलती है । मालती यदि गर्भ को गिरा देती तब उन्हें किसी प्रकार की आपत्ति न होती, परंतु मालती बच्चे को जन्म देना चाहती है ।" मालती को विश्वास था कि उसके घर वाले उसे अपना लेंगे, परन्तु समाज में बदनामी के डर से वे उसे अपनाते नहीं हैं, बल्कि उसकी मां तो उसका गला दबोचने को तैयार हो जाती है और कहनी-अनकहनी कई बातें सुना देती हैं । पारिवारिक स्वार्थ की परत-दर-परत खुल जाती है । उन्हें उसकी कमाई से मतलब है, उसकी व्यक्तिगत जिन्दगी के सुख-चैन से उनका कोई सरोकार नहीं है ।"[24]

कमलेश्वर कृत "डाक बंगला" की डरा विवाह तो करती है, परंतु उसका वह विवाह करना न करना सब बराबर है, क्योंकि पति के रूप में मिलता है उसे बूढ़ा चन्द्रमोहन जो

उसके भीतर की सेमल के लाल-लाल फूलों की (शिशु-प्राप्ति) इच्छा को पूरी नहीं कर सकता । इरा के जीवन में पाँच पुरुष आते हैं, पर वह तरसती ही रहती है । प्रथम प्रेमी विमल शंकर के कारण उसे छोड़ देता है, क्योंकि इरा मि. बतरा के यहाँ रेटेण्डण्ट की नौकरी करती थी । विमल बम्बई चला जाता है, वहाँ जाली नोट बनाने के सिलसिले में उसे बारह साल की जेल हो जाती है । इरा बेहाशगी में खूबसूरती को तलाशने वाले मि. बतरा को समर्पित हो जाती है, परंतु मि. बतरा धोखे से दवाई खिलाकर उसके गर्भ को गिरा देता है । इरा बूढ़े डाक्टर चन्द्रमोहन से मिलने पड़ती है, परन्तु उसकी मृत्यु हो जाती है । कश्मीर यात्रा के दौरान उसे तिलक और मेजर सोलंकी मिलते हैं, उनमें से वह मेजर सोलंकी को पसंद करती है और मेजर सोलंकी द्वारा उसकी वह प्यास, उसकी वह तड़प पूरी भी होने जा रही थी -- माँ बनने की -- किन्तु तभी अचानक अचानक बीमारी की अंतिम अवस्था में विमल आ जाता है, उसका वह प्रथम प्रेमी, जिसे उसने सच्चे मन से चाहा था । जीवन के अंतिम पड़ाव पर वह उसे निराश नहीं करना चाहती और मेजर सोलंकी द्वारा प्राप्त -- सेमल के लाल फूलों का गला घोंट देती है । बाद में विमल की मृत्यु हो जाती है । इरा के जीवन की इस त्रासदी के संदर्भ में डा. पारूकान्त देसाई लिखते हैं --

" जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी या दुर्घटना यही है कि हमें हर चीज, हर सुख मिलता है, पर समय पर नहीं । इरा के जीवन की त्रासदी भी यही है । काश उसे विमल दो या तीन वर्ष बाद मिला होता, काश बतरा की जिन्दगी में वह पन्द्रह बरस पहले आ जाती, काश डाक्टर से उसकी मुलाकात बीस वर्ष पहले होती या काश तिलक उसे पहले मिलता । तब उसके

जीवन को कोई अर्थ मिल पाता । यहां इरा को केवल निरर्थक प्यार ही मिला । उसकी ज़िन्दगी महज़ एक डाक बंगला बन कर ~~xxxxxxxxx~~ रह गई ।" [25]

ममता कालिया द्वारा प्रणीत उपन्यास "बेघर" की नायिका संजीवनी मुंबई के एक व्यापारी परमजीत से विवाह तो करती है, परंतु दाम्पत्य-सुख से वंचित रहती ~~xxx~~ है, क्योंकि उनमें विवाह-विच्छेद हो जाता है । उपन्यास का नायक स्वयं को आधुनिक समझता है, परन्तु उसकी आधुनिकता फैशन और बाहरी चकाचौंध तक सीमित है, भीतर से तो वह ठेठ गंवार और दकियानुस है । चीफ एजण्ट हो जाने के बाद वह सोचता है कि उसका एक सुंदर, सजा-सजाया घर हो, एक सुंदर-सी बीबी हो, एक-दो बच्चे हों, तो फिर क्या कहने । अपने इन सपनों को पूरा करने के लिए वह मुंबई की ही संजीवनी नामक एक सुंदर, सुशील एवं शिक्षित युवती से विवाह करता है, परंतु उन दोनों का वैवाहिक जीवन असफल रहता है, क्योंकि ओढ़ी हुई आधुनिकता के बावजूद परमजीत में मध्यवर्गीय ~~xxxxxx~~ व्यापारी वर्ग की दकियानुसी है । उसने बाजारू पुस्तकों में पढ़ रखा था कि कंवारी लड़की की योनि में एक झिल्ली होती है, जो प्रथम संभोग के समय टूटती है और उसके कारण लड़की को रक्तस्राव होता है । परंतु संजीवनी के साथ ऐसा कुछ भी नहीं होता । प्रथम संभोग के समय वह न चिखती-चिल्लाती है, न उसे कोई तकलीफ होती है, न ही खून निकलता है । अतः सुहाग-रात्रि वाले दिन से ही वह संजीवनी को एक बदचलन स्त्री के रूप में देखने लगता है । फलतः वह संजीवनी से विवाह-विच्छेद कर लेता है । इस प्रकार परमजीत के शक्की स्वभाव के कारण यहां दाम्पत्य खंडित होता है । रमा के साथ भी वह खुश नहीं रह पाता, क्योंकि वह भी खूब संकीर्ण, स्वार्थी और दकियानुसी और फूहड़ है । [26]

निरुपमा सेवती कृत उपन्यास "पतझड़ की आवाजें" की नायिका अनुभा की सगाई भी उसके मंगेतर रमनेश के ऐसे स्वभाव के कारण ही टूटती है। अनुभा का परिवार सैंतालीस के दंगों में पाकिस्तान से भागकर आया था और दरिद्रता में जीवन-यापन के लिए अभिशप्त था। गरीबी के ही कारण उसके परिवार को एक ऐसे मुहल्ले में रहना पड़ता है, जहां वेश्याएं भी रहती थीं। "रमनेश अनुभा से कहता है कि तुम्हारी फियान्सी कैसी जगह पर रहती है। और अन्ततः इसी वजह से वह संबंध टूट जाता है।" 27 रमनेश के स्थान पर यदि कोई साहसी और प्रगतिवादी युवक होता तो वह अनुभा के व्यक्तित्व से प्रेम करता, न कि उसके परिवेश की चिन्ता। वस्तुतः कमजोर लोगों में विश्वास का अभाव होता है। अतः उनके मन में ही शंका-कुशंका के कीड़े कुलबुलाते रहते हैं और अपने भीतरी मन की कालिमा को वे समाज और दूसरों पर थोपते हैं। जहां परमजीत, रमनेश और विमल (डाक बंगला) जैसे नायक होते हैं; वहां xxxx मेजर सोलंकी, तिलक (डाक बंगला), विजय (नावें) और कामेश्वर (उग्रतारा- नागार्जुन) जैसे मर्द और साहसी नायक भी हैं जो दूसरों द्वारा गर्भधारित नारियों के हाथ को थामने का साहस रखते हैं।

शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास "सीढ़ियां" की नायिका मनीषी डाक्टर है। उसके सामने "पचपन खंभे लाल दीवारें" की सुषमा या "टेराकोटा" की मिति जैसी समस्या नहीं है। उसकी समस्या कुछ दूसरे प्रकार की है। उसकी सहेली सुपर्णा मरते समय अपना बेटा उसे सौंप जाती है। कुछ तो व्यस्तता और कुछ xxxx सुकेत के लालन-पालन में उसका समय ऐसे व्यतीत हो जाता है कि उसे पता ही नहीं चलता कि कब सुकेत जवान हो जाता है। सुकेत और मनीषी रिश्ते की उस नज़ाकत के बावजूद एक-दूसरे को चाहने लगते हैं, परन्तु बात फिर वही समाज की आ जाती

है । सुकेत और मनीषी के उम्र में भी काफी अंतर है । सुकेत अपनी "मनी" मौसी को पागलपन की सीमा तक प्यार करता है, मनीषी भी सुकेत को चाहती है, पर प्रौढ़ता, संयम और सामाजिक "टेबूज़" का डर उसे कुछ अनुशासित रखता है । सुकेत मनीषी को बहुत ही चाहता है । यह यौवन के प्रथम ज्वार का प्रेम है । वह मनीषी को अखबार की एक कटिंग बताता है जिसमें विएना में एक पैंतालीस वर्षीय महिला ने तेईस वर्ष के युवक के साथ विवाह कर लिया था । सुकेत मनीषी को कहता है —

" तुम अभी कुल बत्तीस वर्ष की हो और मैं ... मनीषी के यह कहने पर कि यह विएना नहीं हिन्दुस्तान है । यहाँ पर ऐसे विवाह अच्छी नज़र से नहीं देखे जाते । हमारे धर्म-शास्त्रों में भी । सुकेत कहता है कि तुम मेरी सबकुछ हो — मनी, मासी, मित्र, प्रेयसी, सबकुछ । धर्मशास्त्र और हिन्दुस्तान, मैं किसकी कोई चिन्ता नहीं करता । संबंध, समाज और परंपरा इन सब पर तुम मुझे क्यों बलि चढ़ाना चाहती हो ? मेरे लिए ये चीजें कोई महत्व नहीं रखतीं ।" 26

मनीषी सुकेत की बात नहीं मानती और सुकेत का विवाह शारदा नामक एक युवती से करा देती है । शारदा से विवाह के बाद सुकेत का व्यवहार भी बदल जाता है और मनीषी को बहुत दुःख होता है । सुकेत के कारण उसने कई अच्छे रिश्तों को ठुकराया था । " डा. कपूर भी उसे चाहते थे और विवाह भी करना चाहते थे, परंतु पहले सुकेत के पालन-पोषण तथा व्यावसायिक व्यस्तताओं के रहते उस पर विचार नहीं किया और बाद में सुकेत के रहस्यमय आचरण की भीड़ में कुछ सोच नहीं पायी । यहाँ संघर्ष उसके अन्तर्मन के "इद" (Id) और "इगो" (Ego) का है । "इद" सुकेत की तरफ ढलता है,

पर "इगो" उसे सामाजिक-लांछनाओं के नाम से रोकता है ।"[29]

इनके अतिरिक्त "कृष्णकली" की कली , वाणी सेन , पन्ना ; श्मशानचम्पा " की डा. चम्पा ; "प्रिया" की प्रिया ; "उस तक" (कुसुम अंसल) की मुक्ता ; "कीर्तिशेष" (विमला वर्मा); की मिताली ; "उसका घर " (मेहरून्निसा परवेज) की एलमा ; "पतझड़ की आवाजें " की सुनीला ; "छाया मत छूना मन" की वसुधा ; "बंटता हुआ आदमी" की सुनंदा ; " दो लड़कियां " (रजनी पनिकर) की रंजना ; " महानगर की मीता " (रजनी पनिकर) की मीता ; "दिनांत " (शीला रोहेकर) की आशा ; "ढहती दीवारें " (मीना दास) की माधुरी उर्फ सुप्रिया आदि ऐसी नारियां हैं जो दाम्पत्य-सुख की एषणा रखती हैं परन्तु किसी-न-किसी कारण से वे उस सुख से वंचित रहती हैं ।[30]

प्रेमहीन समाज :

महानगरीय परिवेश में दाम्पत्य जीवन को दुष्प्रभावित करने वाला तत्व समाज में निरंतर बढ़ रही प्रेमहीनता (Lorelessness है । महानगरों से धीरे-धीरे प्रेम का छेद उड़ रहा है । मेरे निर्देशक महोदय की गजल का एक शेर है —

"बढ़ेगा प्यार प्यार से
तयशुदा यह बात है ।"[31]

प्रेम से ही प्रेम बढ़ सकता है । आज के बच्चों को प्रेम नहीं मिल रहा है । ये बच्चे बड़े होकर दूसरों को क्या प्रेम देंगे । उन्हें प्रेम नहीं मिला है । वे भी अप्रेम की मरुभूमि का निर्माण करेंगे । "वेस्ट लेण्ड " बढ़ता ही जायेगा । डा. पारूकान्त देसाई ने मन्नू भण्डारी कृत " आपका बण्टी" पर जो लेख लिखा है , उसका

शीर्षक है — " आपका ब्लडी बण्टी " : कल के बिटल की आज की कथा " । अभिप्राय यह कि यह बण्टी जिसे न माँ का प्यार मिला, न बाप का, वह आगे चलकर हिप्पी या बिटल्स न होगा तो क्या होगा ? फिल्म अभिनेता देव आनंद की " हरे राम हरे कृष्ण " इसी "थीम" पर फिल्मायी गयी है ।

वस्तुतः देखा जाय तो विश्व के सभी दुःखों का उपाय यदि कोई है तो वह प्रेम है । अधिकांश मानसिक रोगों का उत्स प्रेमहीनता (Lovelessness) है । आज बहुत-से से युवान अपराध-वृत्ति की ओर जा रहे हैं, कई लोग आत्महत्या कर रहे हैं, कई युवतियाँ अविवाहित मातृत्व धारण करने लगी हैं, दाम्पत्य-खंडन की प्रवृत्ति बढ़ रही है, कई युवा पागल हो रहे हैं, कई जेल की सलाखों के पीछे, अस्पताल बढ़ रहे हैं, पर मरीजों के प्रति प्रेम और आदर रखने वाले डाक्टरों की संख्या में निरंतर कमी दिखाई पड़ रही है, बाल-अपराध बढ़ रहे हैं, माँ-बाप का स्नेह कम हो रहा है, पड़ोसियों के प्रति वैरभाव बढ़ रहा है, राष्ट्र-राष्ट्र के बीच स्पर्धा और शत्रुता बढ़ रही है, क्योंकि विशुद्ध मानवता लुप्त हो रही है, आज विश्व विनाश के कगार पर खड़ा है । यदि हम इसे बचाना चाहते हैं तो मानवीय-प्रेम को पुनर्जीवित करना ही होगा । (31)

वैज्ञानिक-कवि राबर्ट ब्रिजीश इस संदर्भ में कहते हैं —
" Love is a fire in whose devouring flames all earthly ills are consumed. " 32 अर्थात् प्रेम एक ऐसा अग्नि है जो पृथ्वी पर के तमाम अनिष्टों को जलाकर राख कर सकता है । मानस-रोगों के चिकित्सक (Psych मनोवैज्ञानिक) इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि
" The great taproot of mental ills is Lovelessness. " (33)

अर्थात् प्रेमहीनता ही तमाम मानसिक बीमारियों का उत्स है । बाल-मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री तथा अपराध-विशेषज्ञ [Criminologist] आदि सभी इस बात पर सहमत हैं कि समाज के सभी दूषण प्रेमहीनता के परिणाम हैं । वर्ल्ड हेल्थ आर्गेनाइजेशन के डा. जी. ब्रोक चीशोम कहते हैं — " इस पृथ्वी का अस्तित्व परिपक्व मनुष्यों की संख्या पर आधारित है । ये मनुष्य कितने व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रेम दिखा सकते हैं, वह बहुत महत्व का है । आज की सख्त जरूरत है बड़े पैमाने पर " लव-पिपल" बढ़ाने की और "हेट-पिपल" घटाने की । यह एक बहुत बड़ी चुनौती है । " 34

मेरे निर्देशक डा. पारुकान्त देसाई का एक शेर स्मृति में कौंध रहा है — " प्रेम, केवल प्रेम तुम्हें प्रभु समीप ले जायगा ; भूलना यह मत कि मन मीरां का गांव है ।" 35 यदि मन को मीरां का गांव बना दिया जाय तो सभी समस्याएं सुलझ सकती हैं । आज महानगरीय जीवन जो समस्याएं दृष्टिगत हो रही हैं उनके मूल में अप्रसन्न-दाम्पत्य है । दाम्पत्य-जीवन सुखमय नहीं है, संतोषमय नहीं है, तुष्टिमय नहीं है । प्रसन्न-दाम्पत्य प्रसन्न-परिवार का निर्माण करेगा और प्रसन्न-परिवार प्रसन्न समाज का ।

जिस प्रकार एक पुरुष हमारे चित्त को प्रसन्न कर देता है, ठीक उसी प्रकार एक शिशुरूपी पुष्प पति-पत्नी के जीवन को सुवास से भर देता है ; किन्तु " वे दिन " के जाक और रायना अपने बेटे मीता को होस्टेल भेज देते हैं ।"आपका बण्टी " के बंटी को भी अंततोगत्वा होस्टेल ही जाना पड़ता है । "कड़ियां " के पप्पू की भी लगभग वही स्थिति है । इन बच्चों को मां-बाप का प्रेम नहीं मिलेगा । उम्र का वह वह दौर है जब उसे प्रेम की सबसे ज्यादा जरूरत होती है । "कर्मभूमि" उपन्यास में मुंशी प्रेमचन्द अपने एक पात्र द्वारा कहलवाते हैं :" जिन्दगी की वह उम्र

जब इन्सान को मुहब्बत की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, बचपन है, उस वक्त पौदे को तरी मिल जाय तो ज़िन्दगी भर के लिए उसकी जड़ें मजबूत हो जाती हैं। उस वक्त खुराक न पाकर उसकी ज़िन्दगी खुश्क हो जाती है। मेरी मां का उसी जमाने में देहांत हुआ और तब से मेरी रूह को खुराक नहीं मिली, वह भूख मेरी ज़िन्दगी है।" 36

"कर्मभूमि" के अमरकान्त की मां का तो देहान्त हो गया था, परन्तु यहां तो मांएं जिन्दा हैं, रायना भी शकुन भी। इस तरसते-सिसकते शैशव की जवानी क्या होगी? कैसी होगी? क्या वे किसीको प्यार दे पायेंगे? वे निहायत स्वार्थी और खुदगर्ज होंगे। रजनी पनिकर कृत उपन्यास "महानगर की मीता" की नायिका मीता एक युवक को बेलहाशा प्यार करती है। वह स्वयं नौकरी करती है और उसे पढ़ाती है। पढ़-लिखकर जब वह कुछ लायक हो जाता है तब एक दूसरी लड़की से विवाह कर लेता है। मीता ठगी-सी रह जाती है। कारण यही है। नायक अनाथ था। मां-बाप के प्यार से वंचित था। उसमें हमेशा से एक असुरक्षा की भावना मिलती है और ऐसे लोग निहायत स्वार्थी और स्वकेन्द्रित हो जाते हैं।

रमेश बक्षी कृत "बैसाखियों वाली इमारतें" का नायक भी जब-तब प्रेम का मजाक उड़ाया करता है। वह उसे "जीभ पर उगा कैंसर" कहता है। "डाक बंगला" का मि. बतरा भी प्रेम-तत्व से रहित है। देह के मिलन में मन का मिलन जरूरी है ऐसा वह नहीं समझता। "बैसाखियों वाली इमारतें" की मिस जायसवाल भी भावनात्मक प्रेम को बकवास कहती है। "वे दिन" की रायना प्रेम और शरीर-भूख में अंतर नहीं करती। हवा-पानी-अन्न की तरह शरीर की एक भूख होती है और उसे यथावश्यक

संतुष्ट कर लेना चाहिए ऐसी उसकी मान्यता है । ऐसे विषाक्त वातावरण में प्रेम की बेल कैसे पनप सकती है । जिन बच्चों का जन्म प्रेम नहीं केवल वासना से होगा , वे भी प्रेम को क्या खाक समझेंगे ?

मीना दास कृत " ढहती दीवारें " का एक पात्र अजय पैसे को ही एकमात्र मूल्य मानता है और इसलिए अपने व्यवसाय को ही जीवन में सर्वोपरि मानता है । एक स्थान पर वह कहता है — " ये सब [प्यार की चाहत आदि] फालतू सेण्टीमेण्टालिटी हमारी इस लाइन के लिए नहीं । अवर्स इज़ ए ट्वेण्टी फोर अवर्स जोब । अगर माधुरी [उसकी व्याहता पत्नी] चाहे तो किसी पुरुष के साथ जा सकती है , लेकिन मेरे लिए ये प्यार मोहब्बत की बातें सब बकवास हैं । "[37]

मूल्य-विघटन :

महानगरीय परिवेश में दाम्पत्य-जीवन खराबे पर चढ़ गया है , उसका एक कारण जीवन-मूल्यों का विघटन भी है । ज़िन्दगी की धुरी जब गड़बड़ा जाती है तब सबकुछ गड़बड़ा जाता है । ज़िन्दगी की धुरी को बनाए रखने के लिए कुछ जीवन-मूल्यों का होना आवश्यक है । यह अलग बात है कि ये जीवन-मूल्य भी देशकाल सापेक्ष होते हैं और उनका भी निरंतर निरीक्षण-परीक्षण होते रहना चाहिए । पर कहीं-न-कहीं कुछ नीति-नियम-कायदे होने चाहिए । आज महानगरीय जीवन में जो छिन्न-भिन्नता है , उसके मूल में जीवन-मूल्यों का विघटन है ।"आज हम करे सो कायदा , हम करे सो न्याय " वाली बात हो गई है । स्वतंत्रता और स्वच्छंदता में कहीं तो अंतर करना पड़ेगा । व्यक्ति की स्वतंत्रता अच्छी बात है , परंतु स्वतंत्रता के साथ मनुष्य को परिपक्वता का परिचय देना होगा , समझदार होना होगा ।

अन्यथा स्वतंत्रता बंदर के हाथ में तलवार हो सकती है ।

" वे दिन " यौरोप के महायुद्धोत्तर जीवन की मूल्यहीनता को स्थापित करने वाला उपन्यास है । युद्ध में केवल मनुष्य ही नहीं मरते , जीवन-मूल्यों की भी बलि चढ़ाई जाती है । जीवन का "शिवत्व" और "सुंदरत्व" समाप्त हो जाता है । रह जाते हैं केवल विषाद और भयावहता । उपन्यास की नायिका रायना यथार्थ कहती है — " लेकिन कुछ चीजें हैं जो लड़ाई के बाद मर जाती हैं — शांति के दिनों में ... हम उनमें से एक थे । ... वे लोग घरेलू जिन्दगी में खप नहीं पाते । ... मैं किसी काबिल नहीं रह गयी हूँ ... नाट ईवन फार लव । पील किल्ड हट ..."[38]

रायना और जाक का जो जीवन है , वह मूल्यहीनता का परिणाम है । पति-पत्नी में विश्वास , निष्ठा और प्रामाणिकता का होना आवश्यक है ; परन्तु यहाँ दोनों का जीवन स्वच्छंदी है । फलतः जाक रायना को छोड़ देता है । पहले विवाह-पूर्व के देह-संबंधों को अच्छा नहीं माना जाता था , परन्तु महानगरों में यह एक बात हो रही है । प्राग के होस्टेलों में लड़के लड़कियों को लाते हैं । " वे दिन " के नायक को अपने स्वानियन मित्र तथा उनकी प्रेमिकाओं के लिए प्रायः अपनी शामें बाहर गुजारनी पड़ती थीं । यहाँ "प्रेमिकाओं " शब्द पर ध्यान देने की आवश्यकता है । प्रेम में एकनिष्ठता का होना जरूरी माना गया है , परंतु यहाँ किसी प्रकार की कोई निष्ठा नहीं है । नायक इस संदर्भ में कहता है —" यों वह मेरे प्रति क्रूर नहीं था — उसने कई बार मुझसे कहा था कि मैं आँखें मूंदकर अपने पलंग पर लेट सकता हूँ , उसे और उसकी साथिन को कोई आपत्ति नहीं होगी । उसने यह भी आश्वासन दिया था कि मैं चाहूँ तो बीच-बीच में आँखें खोल भी सकता हूँ । "[39]

इस प्रकार इस संपूर्ण उपन्यास में मूल्यहीनता से उत्पन्न खोखलापन और रीतापन दृष्टिगोचर होता है । पहले मां-बाप बेटी के आवारापन को बर्दाश्त नहीं करते थे । उसके विवाह-पूर्व के संबंधों को उनकी सहमति नहीं होती थी , परंतु महानगरों में अब मां-बाप आंख आड़ों कान करने लगे हैं । शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास "नायें " में मालती के मां-बाप को मालती के लोमजी से जो संबंध हैं उनमें कोई आपत्ति नहीं है , क्योंकि घर का पूरा खर्चा मालती की नौकरी पर चलता था । यदि उनकी बाहरी प्रतिष्ठा पर कोई आंच न आये तो उन्हें कोई एतराज नहीं होता । इस उपन्यास में भी मां-बाप विरोध तब करते हैं जब मालती को लोमजी से गर्भ रह जाता है और मालती उसे गिराने से इन्कार करती है । मालती यदि गर्भ गिरा देती तो उन्हें उसमें भी कोई आपत्ति नहीं थी , क्योंकि उनके लिए मालती सोने के अंडे देने वाली मुर्गी थी ।

पहले पति अपनी पत्नी में किसी भी प्रकार की चारित्रिक शिथिलता को बर्दाश्त नहीं करते थे , परन्तु अब भौतिकता की दौड़ में यह मूल्य विस्मृत होता जा रहा है । मीना दास के उपन्यास " ढहती दीवारें " में अजय अपनी पत्नी को कहता है कि वह चाहे तो किसी दूसरे से संबंध रख सकती है । "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " (शैलेश मटियानी) में सेठ नगीनदास अपनी पत्नी सेठानी नर्मदाबेन की रंगीनियों की व्यवस्था खुद करते हैं , ताकि व्यावसायिक लोकों में उनकी बदनामी न हो । बाद में तो खुद सेठानी यह व्यवस्था कर लेती है । घर में पूजागृह बनाया जाता है । उसके लिए "खास" किस्म का पुजारी रखा जाता है । स्कूल और अनाथाश्रम खोले जाते हैं , उसमें प्रिंसिपल और संचालक सेठानी की तबियत के रखे जाते हैं । और ये सब काम सेठ की जानकारी में होते हैं । [40]

भगवतीचरण वर्मा कृत उपन्यास " रेखा " में डा. प्रभाशंकर देवकी नामक एक परस्त्री - ब्याहता स्त्री से संबंध रखते हैं। उन दोनों में लगभग पति-पत्नी जैसे ही संबंध हैं। देवकी के लगभग सभी बच्चे भी डा. प्रभाशंकर के ही थे। प्रभाशंकर के आते ही देवकी का पति किसी-न-किसी बहाने से चला जाता था। वस्तुतः देवकी का पति एक मरियल -सा व्यक्तित्वहीन आदमी था। वह हेड-मास्टर पद का प्रत्याशी था और डा. प्रभाशंकर चुनाव-कमेटी में थे।[41]

पुराने मूल्यों के अनुसार बेटी की कमाई का पैसा हराम समझा जाता था, परंतु अब महानगरीय परिवारों में कई ऐसे परिवार होते हैं, जो बेटी की कमाई पर ही चलते हैं। "पचपन खंभे लाल दीवारें", "टेराकोटा", "नार्चे" जैसे उपन्यासों में हम इसे एकाधिक बार रेखांकित कर चुके हैं।

पति-पत्नी के दाम्पत्य-जीवन में तीसरे व्यक्ति का प्रवेश :

महानगरीय जीवन का यह एक आम पहलू है। पहले अधिकांशतः स्त्री का कार्यक्षेत्र घर की चहारदिवारी में कैद था। अब स्त्री भी पढ़ने-लिखने लग गई है। पढ़-लिखकर वह भी नौकरी करने लगी है। महानगरों में महंगाई के कारण कई बार पति-पत्नी दोनों को नौकरी करनी पड़ती है। छोटे स्थानों पर लोग एक दूसरे को जानते हैं। अतः कई बार दो आंखों का लिहाज भी रहता है। बदनामी का डर रहता है। परंतु महानगरों में अपरिचय का वातावरण रहता है। लोग दूर-दूर नौकरी पर जाते हैं। अतः पति-पत्नी के बीच तीसरे पुरुष का प्रवेश कई

पार जाते-अनजाने हो ही जाता है ।

निरुपमा सेवती द्वारा प्रणीत उपन्यास " पतझड़ की आवाजें " में तीसरे पुरुष का प्रवेश अयोग्यता और स्वार्थपूर्ति के कारण होता है । उषा इस उपन्यास की नायिका अनुभा से अधिक योग्य नहीं है । अनुभा का बॉस उसे पी.एस. (पर्सनल सेक्रेटरी) का पद आफर करता है , परंतु अपने अफसर को खुश करने के लिए उसके साथ होटल या पिकनिक पर जाना उसके स्वाभिमान को स्वीकार्य नहीं था , अतः उसके स्थान पर उषा को ले लिया जाता है । अनुभा का अफसर सी.के. धर्मेन्द्र गुप्त के उपन्यास " नगरपुत्र हँसता है " के परमेश्वरी की भाँति अपने अधिकार का प्रयोग अपनी विलासिता और लंपटता के लिए करना खूब जानता है । अतः उसकी चतुर नजर यह भाँप लेती है कि इस मामले में अनुभा के बदले उषा ही ठीक रहेगी । उषा अत्यन्त महत्वाकांक्षी , स्वार्थी और चापलूस महिला है । जिस पुरुष से उसकी स्वार्थ-सिद्धि होती हो उसके साथ किसी भी सीमा तक जाने में उसे कोई आपत्ति नहीं होती । उसका पति भी यह जानता है । उषा एक स्थान पर कहती है --" इस मर्द जात के साथ सभी सोओ , अगर माल हासिल होता हो या पोजीशन हासिल होती हो ।" 42 इस अर्थ में उषा की तुलना "चिड़ियाघर" की मिसेज रिजवी के साथ कर सकते हैं । मिसेज रिजवी का स्पष्ट मत है कि आराम से नौकरी करनी हो तो अफसर को कब्जे में रखना चाहिए और अफसर को कब्जे में रखा जा सकता है -- स्वयं बेवकूफ बनकर या अफसर को बेवकूफ बनाकर । 43

मेहरुन्निसा परवेज के " आँखों की दहलीज " में तीसरे पुरुष के प्रवेश के लिए स्वयं नायिका की माँ उसे प्रेरित करती है । इसका कारण मुस्लिम परिवेश है । नाजिया की माँ को जब पता

चलता है कि उसकी बेटी माँ नहीं बन सकती तब उसे अपनी के भविष्य की चिन्ता सताने लगती है । तालिया की माँ अपनी बेटी के लिए एक योजना बनाती है जिसमें वह तालिया को एक सुरम्य स्थान पर जावेद नामक युवक के साथ भेजती है और फिर कुछ ऐसा होता है कि तालिया और जावेद शारीरिक संबंधों से बंध जाते हैं । तालिया के लिए यह एक अकस्मात है, परन्तु तालिया की माँ और जावेद के लिए यह एक पूर्व-निर्धारित योजना थी । इस घटना का तालिया के जीवन पर बुरा असर पड़ता है और वह अपराध-भाव से ग्रसित हो जाती है और मानसिक असंतुलन के कारण वह आत्महत्या का प्रयास तक करती है ।

"रेखा" उपन्यास में देवकी के जीवन में प्रोफेसर का प्रवेश तो स्वार्थ और सोची-समझी योजना के तहत है । परंतु रेखा के जीवन में पहली बार जब पर-पुरुष का प्रवेश होता है, तो वह अकस्मात हो जाता है । रेखा प्रोफेसर से विवाह कर लेती है । दोनों की उम्र में काफी फासला था । युवकोचित भावुकता में वह शादी तो कर बैठती है पर प्रोफेसर से उसकी प्यास नहीं बुझती । वह रात-रात भर तड़पती रहती है । उसके जीवन का खतरनाक मोड़ तब आता है, जब युवा राजशंकर (देवकी का पुत्र), जो दीखने में बिलकुल प्रभाशंकर जैसा था, जर्मनी जाने से पहले अपनी माँ के साथ रेखा के यहाँ आता है । रेखा उसकी सब शोपिंग करवा देती है । बढ़िया-बढ़िया चीजें दिलाती है । गाड़ी में उसके निकट बैठते समय वह एक अज्ञात आकर्षण का अनुभव करती है । अनायास उसका हाथ उसके कंधे पर चला जाता है । यौवन की मादक सुगंध का अनुभव उसे पहली बार होता है । परंतु उसकी चेतना और विवेक ने उस दिन उसकी रक्षा कर ली । वैसे उसकी मानसिक नैतिकता व पवित्रता में एक छेद उस दिन जरूर हो गया । वह छेद शनैः शनैः बढ़ता ही गया । उसके भाई अरुण के

मित्र सोमेश्वर दयाल ने जब उसे अपने बाहुपाश में लिया , तब वह ऊपर-ऊपर से तो मना करती रही , पर भीतर से वह उस पागल प्रवाह में बरबस बह रही थी ।" [44]

कमलेश्वर कृत "डाक बंगला" में इरा और विमल परस्पर चाहते हैं । दोनों नाटक के जीव हैं और अपने थियेटर के लिए संघर्ष कर रहे थे । उसके लिए इरा मि. बतरा के यहां एटेण्डण्ट की नौकरी भी करती है । यहां इरा के जीवन में बतरा पहले आया नहीं है , परंतु विमल का शक्की स्वभाव उसे लेकूबता है । स्त्रियों के मामले में बतरा की छवि अच्छी नहीं थी , अतः उसे लेकर विमल शंका-कुशंका करता रहता है और एक दिन इरा को छोड़कर बम्बई भाग जाता है । बतरा को लेकर विमल में लघुता-ग्रंथि होती है । वह सोचता है कि बतरा के पास पैसा है और उसके बल पर वह इरा को अपनी बना सकता है । अतः खूब पैसे कमाने के चक्कर में जाली नोट बनाने वालों के चक्कर में फंस जाता है और उसी सिलसिले में उसे बारह साल की कैद हो जाती है । यहां बतरा इरा के जीवन में पहले नहीं था , परंतु विमल के शंकाशील जगत में एक तीसरे पुरुष के रूप में वह हमेशा रहा और इसी कारण उन दोनों की जिन्दगी बरबाद हुई ।

कमलेश्वर के ही दूसरे उपन्यास " तीसरा आदमी" में तीसरे आदमी की स्थिति मध्यवर्गीय आर्थिक विवशता के कारण है । चित्रा और नरेश का दाम्पत्य-जीवन सुखपूर्ण था । परंतु नरेश की बदली दिल्ली हो जाती है । दिल्ली में आवास की समस्या है । छोटी तनख्वाह में अलग मकान लेकर रहना मुश्किल है । अतः मजबूरी में नरेश को अपने एक दूर के रिश्ते के भाई सुमंत से कमरा शेयर करना पड़ता है । नरेश का जॉब टूरिंग प्रकार का है । अतः जिन दिनों में वह नहीं होता है , उन

दिनों में नये चित्रा और सुमन्त अकेले रहते हैं । एक ही कमरे में दो युवा व्यक्तियों का यों अकेले रहने की कल्पना-मात्र से नरेश कांपने लगता है । उसके मन में बड़े भयावह विचार आते हैं । इस प्रकार संशय का भुजंग नरेश-चित्रा के प्रसन्न दाम्पत्य को डंस जाता है । इस संदर्भ में डा. पारूकान्त देसाई का जो विश्लेषण है वह उद्धरणीय है — " प्रस्तुत उपन्यास में लेखक का उद्देश्य मध्यवर्गीय मनोदशा और संस्कार — जो आर्थिक अधिक है — को गहराई से एक हल्की तिक्तता के साथ उभारने का रहा है । "डाक बंगला " का विमल भी इन्हीं परिस्थितियों का शिकार था । आज के मध्यवर्गीय परिवार में किसी भी वस्तु पर किसीका पूर्णाधिकार नहीं होता । यहां कपड़े-लत्ते , चप्पल , कमरे सब "कामन " होते हैं , तो पत्नी पर भी पूर्णाधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है ? वहां पत्नी भी सबकी जरूरतों में से एक होती है । परिवार के बीच पत्नी के साथ एकान्त का अभाव खलता है , तो परिवार से बाहर पत्नी का किसी अन्य से बढ़ता एकान्त मन और आत्मा पर एक भारी बोझ डाल देता है ।" [45]

व्यक्ति का "इगोइ" और उसके कारण टूटते-भहराते दाम्पत्य :

स्त्री-पुरुष के जीवन में "इगो" से सम्बद्ध जितने प्रश्न और जितनी समस्याएं महानगरीय जीवन में प्राप्त होती हैं , उतने प्रश्न और समस्याएं ग्रामीण या कस्बाई जीवन में प्राप्त नहीं होतीं । एक तो महानगरों में गांव , छोटे नगर और कस्बों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा का परिमाण कुछ ऊंचा होता है । सुशिक्षित स्त्रियां ऊंचे पदों पर काम करती हैं । ये स्त्रियां आम स्त्रियों की तरह दबती नहीं है । आत्म-निर्भर होती हैं । अतः उनमें स्वाभिमान की मात्रा भी कुछ चढ़ी-चढ़ी होती है । दूसरी तरफ पुरुष मनोवृत्ति

में कोई खास बदलाव आया नहीं है । फलतः पति-पत्नी के "ढंगों" निरंतर टकराते रहते हैं और उसके कारण उनका दाम्पत्य-जीवन खंडित होता है ।

मोहन राकेश कृत " अन्धेरे बन्द कमरे " में नीलिमा और हरबंस का दाम्पत्य जीवन ठीक-ठीक नहीं चल रहा । उनमें एक "शीत युद्ध " वाली स्थिति है । हरबंस आधुनिक होने का दम भरता है , किन्तु उसकी ~~आधुनिकता~~ आधुनिकता फैशनेबुल है, काफी-हाउसों की बहसों और बौद्धिक वाद-विवादों तक सीमित । नीलिमा सुंदर, कुलीन और सुशिक्षित है । ऐसी सुशिक्षित पत्नी पर वह गर्व करता है और नये-नये क्षेत्रों के लिए वह नीलिमा को प्रोत्साहित करता है । इसी सिलसिले में वह नीलिमा को पेंटिंग , नृत्य आदि ललित कलाओं की ओर प्रेरित करता है । परंतु यह सब वह अपने पुरुष-दंभ को संतुष्ट करने के लिए करता है । जैसे ही नीलिमा किसी क्षेत्र-विशेष में पारंगत होने लगती है , हरबंस अपने हाथ खींचने लगता है । उसका पुरुष-दंभ यह कतई बर्दाश्त नहीं करता कि नीलिमा उससे आगे निकल जाय । कुछ वर्ष पूर्व "अभिमान" नामक एक फिल्म आयी थी , उसकी "थीम" लगभग यही थी । नीलिमा हरबंस से यथार्थ ही कहती है —

" तुम सिर्फ इस हीन-भावना के शिकार हो कि लोग मुझे तुमसे ज्यादा जानते हैं और उनमें जो बात होती है वह तुम्हारे विषय में न होकर मेरे विषय में होती है । तुम्हें यह बात खा जाती है कि लोग तुम्हारी चर्चा नीलिमा के पति के रूप में करते हैं । तुम्हें डर लगता है कि अगर मेरा प्रदर्शन सफल हुआ , तो लोग मुझे और ज्यादा जानने लगेंगे और तुम अपने को और छोटा महसूस करोगे । " 46

मन्नू भंडारी कृत " आपका बण्टी" में अजय और शकुन का दाम्पत्य-जीवन खंडित होता है, उसके पीछे भी यही "इगो" की समस्या है। अजय की प्रकृति थोड़ी पजेजिव है। वह शकुन पर अपना पूर्णाधिकार चाहता है। शकुन सुंदर है, सुशिक्षित है, प्राचार्या है। उसका "इगो" अजय द्वारा अनुशासित होना नहीं चाहता। वह अपने को अजय से "सुपीरियर" मानती है। "अहं" की इस टकराहट के कारण उनका दाम्पत्य-जीवन नोर्मल नहीं रह पाता है। शकुन में यह भावना कुछ अधिक है। वह हमेशा प्रतिक्रियायित होती है। अजय को नीचा दिखाना चाहती है। अजय को हराना चाहती है। उसकी लगभग तमाम क्रियाएं इसी उपक्रम में होती है।

" आपका बण्टी " के संबंध में डा. महीपसिंह ने एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया था कि जो शकुन पहले किसीका हस्तक्षेप सहन नहीं करती, बाद में डा. जोशी के हस्तक्षेप को कैसे बरदाश्त कर लेती है ? [47] शकुन का चरित्र ही उसका उत्तर है। उसके सारे कार्य-कलाप सहज रूप से संपादित न होकर, अजय की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप ही होते हैं। अजय को "कुछ कर दिखाने के लिए वह कुछ भी बरदाश्त कर सकती है। शकुन के मन की कसक यही है : "सच पूछा जाय तो अजय के साथ न रह पाने का दंश नहीं है यह, वरन् अजय को हरा न पाने की चुभन है यह, जो उसे उठते-बैठते सालती रहती है। " [48] डा. जोशी के साथ उसका विवाह सूत्र में बंधना भी उसकी इसी वृत्ति का परिचायक है। ऐसे विवाह भी अंततोगत्वा सफल नहीं होते, परन्तु वह एक और उपन्यास का विषय है। " [49]

भीष्म साहनी कृत "कड़ियां" में प्रमिला और महेन्द्र का दाम्पत्य-जीवन जो खंडित होता है उसमें प्रमिला का "इगो" कुछ हद तक उत्तरदायी है। प्रमिला को अपनी कुलीनता और संस्कारों

का अभिमान है । वह सौन्दर्य के प्रदर्शन को छिछोरापन मानती है । सेक्स के प्रति जो उसका दृष्टिकोण है उसे भी स्वस्थ या आधुनिक नहीं कहा जा सकता । वह उसे कुछ गोपनीय और अकरणीय-सा मानती है । अतः उसमें एक प्रकार का ठण्डापन पाया जाता है । इसका परिणाम यह आता है कि महेन्द्र अपनी ऑफिस की कैशियर सुषमा के प्रति आकृष्ट होता है । सुषमा से उसके शारीरिक संबंध भी स्थापित होते हैं । महेन्द्र का मित्र नाटा उसे हमेशा सलाह देता रहता है कि पत्नीतर संबंधों को हमेशा छिपाकर रखने चाहिए, परंतु महेन्द्र भावावेश में प्रमिला को सुषमा के संबंध में बता देता है । इस संदर्भ में वह स्वयं में "अपराध-भाव" भी अनुभव करता है । ठीक इसी बिन्दु पर प्रमिला चूक जाती है । महेन्द्र प्रमिला से क्षमा-याचना भी करता है । यहाँ पर प्रमिला को कुछ सख्ती का नाटक करते हुए थोड़ा झुक जाना चाहिए था । यदि वह महेन्द्र को क्षमा कर देती और आगे के लिए सावधान हो जाती और अपने "अहं" को छोड़कर कुछ "सजने-संवरने" में ध्यान देती तो शायद उसका दाम्पत्य बच जाता । प्रमिला को समझना चाहिए कि अन्य क्षेत्रों की भाँति दाम्पत्य के क्षेत्र में भी अब स्पर्द्धा है । इस "शो-मेन-शीप" के जमाने में आधुनिक पति के मन को जीतने के लिए स्त्री को पतिव्रता नहीं, अपितु "अप-टु-डेट" होना पड़ता है । प्रमिला अपने पुराने संस्कारों के अहं में यह नहीं कर सकती, यही उसकी त्रासदी है ।

खंडित दाम्पत्य के कारण बच्चों की दयनीय त्रिशंकु-सी स्थिति :

महानगरों में खंडित दाम्पत्य की यह समस्या जो निरंतर विकटतम रूप धारण कर रही है उसकी चपेट में निर्दोष बच्चे मारे जा रहे हैं । माँ-बाप तो विवाह-विच्छेद करके अपना एक अलग संसार

बसा लेते हैं, यद्यपि वहाँ भी उनका दाम्पत्य तो खंडित ही रहेगा क्योंकि शिशु-पालन के अभाव में दाम्पत्य-सुख अधूरा ही रहेगा; परंतु इसमें सबसे ज्यादा कमबख्ती बच्चों की आती है। अकारण उन निर्दोष निरीह आत्माओं को यंत्रणा की भट्ठी में झुलसना पड़ता है।

पूर्ववर्ती पृष्ठों में यह भी संकेतित किया गया है कि इससे दाम्पत्य-खंडन की यह समस्या और भी गहराती जायेगी, क्योंकि ये अभिशप्त बच्चे, जिनको कभी प्यार नहीं मिला, किसीको प्यार दे पायेंगे? समाज के प्रति क्या उनका दृष्टिकोण स्वस्थ रह पायेगा? क्या ये "प्रोब्लेमेटिक चाइल्ड" "प्रोब्लेमेटिक पेरेण्ट्स" नहीं बनेंगे?

मन्नू भण्डारी कृत "आपका बंटी" में इसी समस्या को उकेरा गया है। स्वयं मन्नूजी ने इस संदर्भ में कहा है --

" मैं दिखाना चाहती थी कि खंडित माता-पिता के बच्चे किन परिस्थितियों से गुजरते हैं। सबका अपना-अपना व्यक्तित्व होता है। इस सारी परिस्थिति में बच्चों पर क्या प्रतिक्रिया होती है, यही दिखाना चाहती थी। मैंने ऐसे बच्चों को देखा है, तब बेचैन महसूस किया है। मैं उसीको पाठक तक पहुंचाना चाहती थी। " 50

प्रस्तुत उपन्यास में बण्टी की जो दयनीय स्थिति बनती है, उसके संदर्भ में डा. हेमचन्द्र जैन यथार्थ ही कहते हैं -- " इन दोनों के बीच बण्टी अपने आपको सदैव अनजाना-अनचाहा महसूस करता है। बण्टी ममी के पास रहते हुए भी पापा के प्यार का आकांक्षी बना रहता है और पाप से मिलते रहने पर

भी माँ के प्यार को पाते रहने की चाह उसके मन में बनी रहती है। मन्नू भण्डारी ने जहाँ एक ओर अंजुल के मन की कसक को चित्रित किया है, वहीं दूसरी ओर छूटती चीजों के प्रति बण्टी के मोह को भी पूरी मनोवैज्ञानिकता से चित्रित किया है। अपने आसपास की सभी वस्तुओं के विषय में जानने की बण्टी की तीव्र जिज्ञासा तथा तीव्रता से बदलने वाली स्थितियों के साथ "एडजस्ट" न हो पाने के दर्द को भी लेखिका ने बड़ी कुशलता से शब्दबद्ध किया है। बालक-मन का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण सामान्यतः सफल रहा है और ही बण्टी के सोचने का मुहावरा उसका अपना न प्रतीत होता है। " 51

परन्तु डा. जैन की अंतिम बात से सहमत नहीं हुआ जा सकता। उनके कहने का अभिप्राय कदाचित यह है कि बण्टी एक बड़े व्यक्ति की तरह सोचता है, बच्चे की तरह नहीं। परंतु यह भी एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि दुःख मनुष्य को मांजता है और जिन अभागे शिशुओं पर बचपन में ही अन्याय और अत्याचार होते हैं, वे तो समय से पहले ही समझदार हो जाते हैं। बचपन में ही बुढ़िया जाते हैं।

भीष्म साहनी कृत "कड़ियाँ" का पम्पू भी बण्टी की तरह एक अभिशप्त शिशु है। महेन्द्र और प्रमिला के झगड़े में बेचारा निर्दोष पम्पू मारा जाता है। महेन्द्र प्रमिला को छोड़ देता है। पम्पू को बोर्डिंग में डाल दिया जाता है। उसे मजबूरन अनाथों-सी ज़िन्दगी जीनी पड़ती है। अपने पिता से हमेशा सहमा-सहमा सा रहता है। आठ साल का हो गया है, पर बिस्तर में पेशाब कर देता है। रास्ते में भी कपड़े बिगाड़ता है। बाल-मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि ऐसे बच्चों में एक अज्ञात भय हमेशा समाया हुआ रहता है। वे हमेशा असुरक्षित महसूस करते हैं और इसीलिए ऐसा सब होता है।

निर्मल वर्मा कृत " वे दिन " का मीता भी इसी प्रकार का बच्चा है । पिता जाक ने उसकी माँ रायना को छोड़ दिया है । जाक और रायना दोनों स्वतंत्र और स्वच्छंद हैं । मीता को होस्टेल में छोड़ रखा है । छुट्टियों में मीता बारी-बारी से जाक और रायना के साथ रहता है । यह बाँटना किसी प्रेम या लगाव के कारण नहीं , अपितु जिम्मेदारी या बोझ को बाँटने के रूप में है । पर मीता की स्थिति घण्टी या पम्पू जितनी दयनीय इसलिए नहीं है कि योरोपीय परिवेश में स्वयं मीता को वह उतना अटपटा नहीं लगता है , तथापि जिन बच्चों के माँ-बाप साथ-साथ रहते हैं , उनकी तुलना में उसे एक कमी का अहसास तो होता ही है ।

विभिन्न स्तरों पर दाम्पत्य की स्थिति :

महानगरीय परिवेश में हमें मोटे तौर पर समाज के तीन स्तर या वर्ग उपलब्ध होते हैं — उच्च वर्ग , मध्य वर्ग और निम्न वर्ग । दाम्पत्य-जीवन की दृष्टि से विचार करें तो इन तीनों वर्ग में हमें भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएँ मिलती हैं । बल्कि यों भी कह सकते हैं कि एक वर्ग की जो दाम्पत्य-विषयक समस्या है , वह दूसरे वर्ग में समस्या ही नहीं रहती । एक वर्ग में जो बात गंभीर है , दूसरा वर्ग उसे नितान्त हास्यास्पद मान सकता है । उदाहरणतया "तीसरा आदमी" की जो समस्या है , निम्नवर्ग का व्यक्ति उसे समस्या ही नहीं मानेगा । "कड़ियाँ" की जो समस्या है और जिसके कारण प्रमिला और महेन्द्र अलग हो जाते हैं , निम्न वर्ग और उच्च वर्ग में उसे समस्या ही नहीं माना जायेगा । निम्न वर्ग वाले उसे निहायत सामान्य-सी बात कहेंगे तो उच्च वर्ग वाले उसे " मिडिलक्लास मेण्टालिटी " कहेंगे । अभिप्राय यह कि इन तीनों वर्ग की मान्यताओं और धारणाओं में काफी अन्तर है ।

उच्च वर्ग :

महानगरीय परिवेश के "अन्धेरे बन्द कमरे" , " मछली मरी हुई " , " रुकोगी नहीं राधिका " , "आपका बण्टी" , "कृष्णकली", "उसके हिस्से की धूप" , " चित्तकोबरा" , " नावें" , " ढहती दीवारें" , "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " , "छिन्नमस्ता" , "मुझे चांद चाहिए " प्रभृति उपन्यासों में हमें उच्च वर्ग से सम्बद्ध दाम्पत्य जीवन की समस्याएं मिलती हैं । यहां दाम्पत्य-जीवन को खंडित करने वाले कारकों में प्रधानतः "इगो" की समस्या , स्वच्छंद यौन जीवन-शैली , व्यावसायिक व्यस्तताएं , पति-पत्नी के शीत संबंध आदि को रेखांकित किया जा सकता है ।

मध्यवर्ग :

"छोटे छोटे पक्षी " , "अनदेखे अनजान पुल" , "पचपन खंभे लाल दीवारें " , "डाक बंगला " , " तीसरा आदमी" , "बेघर" , "नरक-दर-नरक " , "पतझड़ की आवाजें" , "[illegible] "नावें" , " दिनांत " , "उन्माद" जैसे उपन्यासों में हमें मध्यवर्गीय दाम्पत्य-जीवन की समस्याएं दृष्टिगत हो सकती हैं । यहां आर्थिक समस्याएं , सामाजिक वर्जनाएं , पारिवारिक प्रतिबद्धताएं , पति-पत्नी के बीच तीसरे व्यक्ति का प्रवेश , शंका-कुशंकाएं जैसे कारक दाम्पत्य-जीवन की दीवारों को खोखली करते हैं ।

निम्नवर्ग :

"मुर्दाघर " , " बोरीवली से बोरीबन्दर तक " , "नर्मदाबेन गंगूबाई " , " अन्धेरे बन्द कमरे " , " अनारो " , " बसन्ती", "ढहती दीवारें" , " बंटता हुआ आदमी " प्रभृति उपन्यासों में हमें निम्नवर्गीय जीवन का नरक देखने को मिलता है । इनमें "अंधेरे

बन्द कमरे" , "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई " , " ढहती दीवारें" जैसे उपन्यासों में उच्चवर्गीय जीवन की कुछ झलकियां भी देखने को मिलती हैं , अतः विसदृशता (कोन्ट्रास्ट) की दृष्टि से भी इनका विश्लेषण किया जा सकता है । " अन्धेरे बन्द कमरे" में अधिकांशतः उच्चवर्गीय और मध्यवर्गीय जीवन रेखांकित हुआ है , किन्तु कस्साबपुरा का जो चित्रण है उसमें निम्नवर्गीय जीवन का यथार्थ चित्रण हुआ है ।

"अन्धेरे बन्द कमरे" में यह जो कस्साबपुरा का वर्णन है उसके संदर्भ में औपन्यासिक संगठन में दोष बताते हुए श्रीकान्त वर्मा ने आपत्ति उठाई थी कि इसमें ड्राइंग-रूम और सड़क साथ-साथ चल रहे हैं । ड्राइंग-रूम हरबंस-नीलिमा तथा उनसे सम्बद्ध "सोफेस्टिकेटेड" समाज है और सड़क दिल्ली के निम्न-वर्गीय कस्साबपुरा की ज़िन्दगी है । किन्तु उसके औचित्य को स्थापित करते हुए डा. पारूकान्त देसाई ने लिखा है — " निम्नवर्गीय ज़िन्दगी का चित्र इस विसदृशता को व्यंजित करता है कि न केवल इन लोगों की ज़िन्दगी खोखली है , बल्कि उनके सुख और दुःख भी खोखले हैं । दुःख किसे कहा जाता है , शायद वे जानते नहीं हैं । इनका दुःख कई बार रोमानी ख्याल मात्र होता है । यशपाल की "दुःख" नामक कहानी इसका सर्वोत्तम उदाहरण है । अतः उस दूसरी ज़िन्दगी के यथेष्ट चित्रण द्वारा लेखक ने न केवल उपन्यास की व्यंग्यात्मकता को बढ़ाया है , अपितु उसे सूक्ष्म व पैना भी किया है । तथाकथित आधुनिकता की भले रक्षा न हुई हो , कलाकार के सामाजिक दायित्व की रक्षा उससे अवश्य हुई है ।" 52

वर्षों पहले "त्यागपत्र" उपन्यास में जैनेन्द्रजी ने महानगरों की झोंपड़पट्टियों के परिवेश का जो यथार्थ चित्रण किया था उसे दहृत करने का मोह संवरण नहीं कर पा रही हूं । यथा — " यहां छल

असंभव है , जो छल कि शिष्ट समाज में जरूरी ही है । यहां सह-जीव की मांग नहीं है । बेहयाई जितनी उघड़ी सामने आये उतनी ही रसीली बनती है । बर्बरता को लाज का आवरण नहीं चाहिए । मनुष्य यहां खुलकर सगर्व पशु हो सकता है । जो नहीं हो सकता , उसकी मनुष्यता में बट्टा समझा जाता है । इसलिए सच्चरित्र दीखने-वाला यहां नहीं टिक सकता । उसे मज्जा तक सच्चा होना होगा, तभी गैरियत है । जो बाहर हो , वही भीतर । भीतर पशु हो तो इस जलवायु में आकर बाहर की मनुष्यता एक क्षण नहीं ठहरेगी । मनुष्य हो , तो भीतर तक मनुष्य होना होगा । कलई वाला सदाचार यहां खुलकर उघड़ रहता है । यहां खरा कंचन ही टिक सकता है , क्योंकि उसे जरूरत नहीं कि वह कहे कि मैं पीतल नहीं हूं । यहां कंचन की मांग नहीं है , पीतल से परहेज नहीं है । इससे पीतल रखकर ऊपर कंचन दीखने वाला लोभ यहां छन-भर नहीं टिकता है । बल्कि यहां पीतल का मूल्य है । इससे सोने के धैर्य की यहां परीक्षा है । सच्चे कंचन की पक्की परख यहीं होगी । यह यहां की कसौटी है ।" 53

जगदम्बाप्रसाद दीक्षित द्वारा प्रणीत "मुरदाघर" उपन्यास महानगरीय परिवेश के इस आयाम को तिक्त कटुताओं के साथ उकेरता है । इस विषय पर मराठी में " माहिम ची झोंपड़पट्टी " नामक उपन्यास भी उपलब्ध होता है । मराठी में ही जयंत दळवी कृत यह " इसी परिवेश पर आधारित उपन्यास है , जिस पर इसी नाम से एक ~~xxxxxx~~ " न्यू देव " फिल्म भी बनी है । "मुरदा-घर की समालोचना करते हुए डा. देसाई ने यथार्थ लिखा है -- " पर "मुरदाघर " केवल इन जीवित मुरदा पात्रों से अटा-पड़ा नहीं है , प्रत्युत इसमें लेखक ने स्थापित व्यवस्था की विसंगतियों एवं अन्तर्विरोधों के संघात में मानवता के झिलमिलाते दीपों के अस्तित्व-संघर्ष एवं मानवीय जिजीविषा के द्वन्द्व को एक मानवीय संवेदनशील दृष्टि एवं दर्द के साथ उभारा है । इसके अभाव में

प्रस्तुत कृति एक सामान्य उपन्यास बनकर रह जाती । अनेक मार्मिक स्थलों पर लेखक ने अपनी प्रतिभा की उंगली रख दी है । ... लड़ी-पार होते हुए भी पुलिस के डर को भुलकाकर भुलाकर जुंधार का अपनी पत्नी हसीना और पुत्र अमजद के लिए , उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए आना , चोरी करना तथा मरणासन्न पिटाई के बावजूद अपराध को अस्वीकृत करते जाना ; रोजी का जलवार के लिए जीवन में पहली बार भीख मांगना ; मैना के साथ हमेशा झगड़ते रहने पर भी पोपट की मृत्यु पर वजीरन का उसके साथ जाना ; ~~अंय~~ स्वयं मैना का पोपट — जो पति नहीं केवल पति का तर्क है और जिसे वह सदैव गालियाँ देती रहती है — के लिए कलपना-बिलखना ; आसन्नप्रसवा मरियम के लिए जमीला का ग्राहक छोड़कर उसके पास बैठना ; मरियम के बच्चा होने पर सब वेश्याओं द्वारा उसे खिलाना आदि ऐसे ही स्थान हैं , जहाँ लेखक ने मानवीय संवेदनाओं को तलाशने का सच्चा यथार्थवादी प्रयास किया है ।" [54]

अनेक संघर्षों और भयंकर गरीबी के बावजूद इन लोगों में हमें मानवीय संवेदनाएं और रिश्तों की ~~अहमियत~~ अहमीयत जैसे मूल्य मिलते हैं । मंजुल भगत कृत "अनारो" उपन्यास की अनारो एक जुझारू औरत है । जीवन की हर लड़ाई वह अकेले लड़ती है । वह बड़ी-बड़ी कोठियों में काम करती है और अपने पति तथा परिवार का पेट पालती है । अनारो का पति गंदलाल अनारो की कमाई पर ऐश करता है । उसे किसी बात की कोई फिकर-चिन्ता नहीं है । अच्छा खाना और शराब मिल जाते हैं । अनारो को देखकर "मुरदाघर" की मैना स्मृति में कौंध जाती है । उसका पति पोपट केवल नाम का पति है , पर अनारो अपने पति पर अपना अधिकार भी चाहती है । वह उसकी तमाम जरूरतें शान से पूरी करती है । जब उसका मन करता है , कुछ दिनों के लिए भाग जाता है , फिर वापिस आ जाता है । पर अनारो विरोध नहीं करती ।

वह उनके तीन बच्चों को पालती है । परन्तु अनारो से यह बर्दाश्त नहीं होता कि नंदलाल उसकी छाती पर कोई और औरत ले आवे । एक बार वह ऐसा करता है, तब वह डटकर उसका मुकाबला करती है । अंततः नंदलाल उस औरत को अलग रख देता है । वह भी बाद में नंदलाल के लिए कमाई का जरिया हो सकती है । अनारो के चरित्र की ऊँचाई तो वहाँ दिखाई पड़ती है, जब उसे मालूम होता है कि नंदलाल की वह औरत किसी दूसरे मर्द के साथ उस बच्चे को लेकर रह रही है जो उसे नंदलाल से हुआ था । अनारो से यह बरदाश्त नहीं होता । वह नंदलाल को कहती है कि वह जाकर उस बच्चे को ले आवे । [55]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यहाँ गरीबी है, गंदगी है, दीनहीनापन है, किन्तु साथ ही उनमें एक प्रकार का जीवन और जुझारूपन है । उनके झोंपड़ों की दीवारें कच्ची होती हैं, कहीं-कहीं तो टाट की होती हैं, पर रिश्तों की दीवारें पक्की होती हैं । यहाँ पीतल की परवाह नहीं है । सोने की चिन्ता नहीं है ।

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्राध्ययन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक आसानी से पहुँच सकते हैं :—

(1) महानगरों में परिवार-विषयक विभावना निरंतर सिमटती गई है और स्थिति अब एकल-परिवार तक आ पहुँची है । इसने दाम्पत्य जीवन को गहराई से प्रभावित किया है ।

(2) युग्मक परिवार के कारण दाम्पत्य- जीवन खंडित होने लगा है । किसीको कोई कहने-सुनने वाला नहीं रहा । सामाजिक अंकुश समाप्त हो गया ।

(3) एकल-परिवार के कारण भी दाम्पत्य-जीवन को काफी असर पहुंचा है । उत्तरदायित्व जैसे मूल्य का कोई अर्थ नहीं रहा ।

(4) जो नारियां दाम्पत्य-सुख से वंचित रह जाती हैं कालान्तर में "सेडिस्ट" होकर दूसरों के प्रसन्न-दाम्पत्य को ग्रस सकती हैं ।

(5) प्रेमहीनता (Lovelessness) की स्थिति के कारण दाम्पत्य-जीवन न केवल खंडित हो रहे हैं, बल्कि उनमें व्यावसायिक प्रीति-संबंध विकसित हो रहे हैं ।

(6) मूल्यों के विघटन ने भी दाम्पत्य-जीवन को बुरी तरह से प्रभावित किया है और मालूम यह है कि पुराने मूल्यों के सामने नये मूल्य बहुत कम आ रहे हैं ।

(7) महानगरीय-जीवन की आवश्यकताओं और विवशताओं के कारण न चाहते हुए भी जाने-अनजाने ही पति-पत्नी के बीच एक तीसरे व्यक्ति का प्रवेश अपरिहार्य बन गया है । उसके कारण दाम्पत्य-जीवन को घुन लग रहा है ।

(8) महानगरीय-परिवेश में परिवर्तित स्थितियों के कारण स्त्री-पुरुष उभय में "हनी" की समस्या बढ़ रही है और उसके कारण दाम्पत्य-जीवन को ग्रहण लग रहा है ।

(9) खंडित दाम्पत्य के कारण निर्दोष-निरीह बच्चों का जीवन नरक-सा हो रहा है । वे न इधर के रहते हैं न उधर के । ऐसे बच्चे युवा होकर फिर एक खंडित दाम्पत्य को जन्म देंगे ।

(10) उच्चवर्ग, मध्यवर्ग और निम्नवर्ग की दाम्पत्य-विषयक समस्यायें विभिन्न प्रकार की होती हैं ।

==== XXXX ====

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ द्रष्टव्य : चिन्तनिका : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 106 ।

§2§ अलग अलग वैतरणी : डा. शिवप्रसाद सिंह : पृ. 686 ।

§3§ सी : एन ए.वी.शेड. आफ लव ।

§4§ नदी फिर बह चली : हिमांशु श्रीवास्तव : पृ. 230 ।

§5§ द्रष्टव्य : हिन्दी के नगरीय परिवेश के उपन्यासों में मानव-जीवन की समस्याएं : शोध-प्रबंध : डा. सी.एस. पटेल : पृ. 161-162 ।

§6§ द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 122 ।

§7§ बैसाखियों वाली इमारत : रमेश बक्षी : पृ. 2 ।

§8§ और §9§ : वही : पृ. क्रमशः 31, 108 ।

§10§ कड़ियाँ : भीष्म साहनी : पृ. 12 §11§ वही : पृ. 33 ।

§12§ हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 252 ।

§13§ तीसरा आदमी : कमलेश्वर : पृ. 82 ।

§14§ द्रष्टव्य : आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 117 ।

§15§ द्रष्टव्य : मुझे चांद चाहिए : सुरेन्द्र वर्मा : पृ. 550

§16§ रेखा : भगवतीचरण वर्मा : पृ. 23 ।

§17§ साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ. 136 ।

§18§ पचपन खंभे लाल दीवारें : उषा प्रियंवदा : पृ. 109-110 ।

§19§ संदर्भ -संख्या- 14 के अनुसार : पृ. 11 ।

§20§ बैसाखियोंवाली इमारत : पृ. 64 ।

§21§ पचपन खंभे लाल दीवारें : पृ. 123 ।

§22§ द्रष्टव्य : साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ. 50 ।

§23§ प्रकर : संयुक्त विशेषांक : मई-जून : 1972 : पृ. 43 ।

§24§ आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास :
डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 117 ।

§25§ हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी
उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 251 ।

§26§ द्रष्टव्य : संदर्भ-संख्या-24 के अनुसार : पृ. 51 ।

§27§ वही : पृ. 109 ।

§28§ सीढ़ियां : शशिप्रभा शास्त्री : पृ. 327 ।

§29§ संदर्भ-संख्या-24 के अनुसार : पृ. 121 ।

§30§ द्रष्टव्य : वही : पृ.35-148 ।

§31§ लेख : मनोरोगनुं मूळ : गुजराती : हर्षवर्धन : संदेश : दिनांक-
28-7-2002 : साप्ताहिक-पूर्ति : पृ. 1 ।

§32§ से §34§ : वही : पृ. क्रमशः 1, 1, 6.

§35§ उनके व्याख्यान में सुना हुआ शेर ।

§36§ कर्मभूमिःप्रेमचंदःपृ. 114 §37§ ढहती दीवारें : मीनादासः पृ. 100

§38§ वे दिन : पृ. 211 §39§ वही : पृ. 27 ।

§40§ द्रष्टव्य : शलेश मटियानी का कथा-साहित्य : शोध-प्रबंध :
डा. सलीम व्होरा : पृ. 97 ।

§41§ द्रष्टव्य : हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में
साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकांत देसाई : पृ. 152 ।

§42§ पतझड़ की आवाजें : निरुपमा सेवती : पृ. 95 ।

§43§ चिड़ियाघर : गिरिराज किशोर : पृ. 52 ।

§44§ साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : पृ. 16 §45§ वही : पृ. 139-140

§46§ अंधेरे बन्द कमरे : पृ. 345 §47§ संचेतनाःदिसम्बरः1971: पृ. 62

§48§ आपका घण्टी : पृ. 39 ।

§~~49~~§ ~~संदर्भ-41 के अनुसार : पृ. 265~~ §50§ मन्नू भण्डारी : संचेतना
द्वारा आयोजित गोष्ठी में : संचेतना : समकालीन
उपन्यास अंक : दिसम्बर : 1971 : पृ. 63 ।

49
{50} हिन्दी उपन्यास साहित्य की विकास परंपरा में साठोत्तरी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 265 ।

{51} वही : पृ. 255-256 ।

{52} वही : पृ. 257-256 ।

{53} त्यागपत्र : जैनेन्द्रकुमार : पृ. 80-81 ।

{54} साठोत्तरी हिन्दी उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई:पृ. 165-166 ।

{55} आधुनिक लेखिकाओं के नगरीय परिवेश के उपन्यास : डा. पारूकान्त देसाई / : पृ. 80-81 ।

===== XXXXXXXX =========